कशता दुख और शांति

वैज्ञानिक मानस सोचा करता था कि अव्यक्तिगत ज्ञान की, विषयगत ज्ञान की संभावना है। असल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यही ठीक-ठीक अर्थ हुआ करता था। 'अव्यक्तिगत ज्ञान' का अर्थ है कि ज्ञाता अर्थात जानने वाला केवल दर्शक बना रह सकता है। जानने की प्रक्रिया में उसका सहभागी होना जरूरी नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि यदि वह जानने की प्रक्रिया में सहभागी होता है तो वह सहभागिता ही ज्ञान को अवैज्ञानिक बना देती है। वैज्ञानिक ज्ञाता को मात्र द्रष्टा बने रहना चाहिए, अलग-थलग बने रहना चाहिए, किसी भी तरह उससे जुड़ना नहीं चाहिए जिसे कि वह जानता है।

लेकिन अब बात ऐसी नहीं रही। विज्ञान प्रौढ़ हुआ है। इन थोड़े से दशकों में, पिछले तीन-चार दशकों में विज्ञान अपने भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति सचेत हुआ है। ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो अव्यक्तिगत हो। ज्ञान का स्वभाव ही है व्यक्तिगत होना। और ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो असंबद्ध हो, क्योंकि जानने का अर्थ ही है संबद्ध होना। केवल दर्शक की भांति किसी चीज को जानने की कोई संभावना नहीं है; सहभागिता अनिवार्य है। इसलिए अब सीमाएं उतनी स्पष्ट नहीं रही हैं।

पहले कवि कहा करता था कि उसके जानने का ढंग व्यक्तिगत है। जब एक कवि किसी फूल को जानता है तो वह उसे पुराने वैज्ञानिक ढंग से नहीं जानता। वह बाहर-बाहर से ही देखने वाला नहीं होता। किसी गहरे अर्थ में वह वही बन जाता है : वह उतरता जाता है फूल में और फूल को उतरने देता है अपने में, और एक गहन मिलन घटता है। उस मिलन में फूल का स्वरूप जाना जाता है।

अब विज्ञान भी कहता है कि जब तुम किसी चीज को ध्यानपूर्वक देखते हो तो तुम सहभागी होते हो—चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो वह सहभागिता, लेकिन फिर भी तुम सहभागी होते हो। कवि कहा करता था कि जब तुम किसी फूल की तरफ देखते हो तो वह फिर वही फूल नहीं रहता जैसा कि वह तब था जब किसी ने उसकी ओर देखा न था, क्योंकि तुम उसमें प्रवेश कर चुके हो, उसका हिस्सा बन चुके हो। तुम्हारी दृष्टि भी अब उसका हिस्सा हो जाती है; पहले वह वैसा न था। जंगल में किसी अज्ञात पगडंडी के किनारे खिला एक फूल, जिसके पास से कोई गुजरा नहीं, वह एक अलग ही फूल होता है; फिर अचानक कोई आ जाता है जो देखता है उसकी तरफ—वह फूल अब वही न रहा। फूल बदल देता है द्रष्टा को, और दृष्टि बदल देती है फूल को। एक नई गुणवत्ता प्रवेश कर गई।

लेकिन यह ठीक था कवियों के लिए—कोई भी उनसे बहुत तार्किक और वैज्ञानिक होने की आशा नहीं रखता—लेकिन अब तो विज्ञान भी कहता है कि यही प्रयोगशालाओं में घट रहा है : जब तुम निरीक्षण करते हो तो निरीक्षण की वस्तु वही नहीं रह जाती, उसमें देखने वाला शामिल हो जाता है और गुणवत्ता बदल जाती है। अब भौतिकशास्त्री कहते हैं कि जब कोई उन्हें देख नहीं रहा होता तो परमाणु अलग ही ढंग से व्यवहार करते हैं। जैसे ही तुम उन्हें देखते हो, वे तुरंत अपनी गतियां बदल देते हैं। बिलकुल ऐसे ही जैसे कि जब तुम अपने स्नानगृह में होते हो तो तुम एक अलग ही व्यक्ति होते हो; फिर अचानक ही तुम्हें लगता है कि चाबी के छेद से कोई देख रहा है—तत्क्षण तुम बदल जाते हो। परमाणु भी जब अनुभव करता है कि कोई देखने वाला है, तो फिर वह वही नहीं रह जाता; वह अलग ही ढंग से गति करने लगता है। यही थीं सीमाएं : विज्ञान को समझा जाता था बिलकुल अव्यक्तिगत; कला थी विज्ञान और धर्म के मध्य में और समझा जाता था कि उसकी आंशिक सहभागिता होती है; और धर्म था समग्र सहभागिता।

एक कवि देखता है फूल को, तब ऐसी झलकियां मिलती हैं जब वह भी खो जाता है, फूल भी खो जाता है। लेकिन ये केवल झलकियां ही होती हैं; कुछ क्षणों के लिए मिलन घटता है, और फिर वे अलग हो जाते हैं, फिर वे पृथक हो जाते हैं। जब एक रहस्यदर्शी, एक धार्मिक व्यक्ति फूल को देखता है तब क्या घटता है? तब सहभागिता समग्र होती है, आंशिक नहीं होती। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जाते हैं; बच रहती है केवल वह ऊर्जा जो दोनों के बीच आंदोलित हो रही होती है। अनुभूति बच रहती है; अनुभव करने वाला नहीं बचता, न ही अनुभव की विषय-वस्तु बचती है। विपरीतताएं खो जाती हैं, विषय और विषयी मिट जाते हैं, सारी सीमाएं खो जाती हैं।

धर्म एक समग्र सहभागिता है। कविता या कला या चित्रकला आंशिक सहभागिता है।

विज्ञान बिलकुल भी भागीदार न था। अब बात ऐसी नहीं है। विज्ञान को वापस कविता के, धर्म के ज्यादा निकट आना पड़ा है। अब सारी सीमाएं एक-दूसरे में घुल-मिल गई हैं। केवल पचास वर्ष पहले तक वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित व्यक्ति हंस

देता पतंजलि पर, खिलखिला कर हंस पड़ता शंकर और वेदांत पर और अपने भीतर सोचता कि ये लोग पागल हो गए हैं। अब असंभव है पतंजलि पर हंसना। वे ज्यादा ठीक सिद्ध हो रहे हैं।

जैसे-जैसे विज्ञान ज्यादा गहरे विकसित होता जाता है, योग ज्यादा प्रामाणिक और ज्यादा सत्य मालूम हो रहा है। क्योंकि योगी की सदा यही दृष्टि रही हैः कि अस्तित्व अखंड है। पृथकता, सीमाओं का विभाजन कामचलाऊ है—यह अज्ञानवश है। इसकी जरूरत है; यह एक आवश्यक प्रशिक्षण है। तुम्हें गुजरना ही है इसमें से, तुम्हें भोगना है इसे और अनुभव करना है इसे—लेकिन तुम्हें गुजर जाना है इसमें से। यह कोई घर नहीं है; यह केवल एक मार्ग है। यह संसार पृथकता का, वियोग का मार्ग है। यदि तुम गुजर जाते हो इसमें से और तुम समझने लगते हो पूरे अनुभव को, तो मिलन और विवाह पास आता जाता है—और पास, और पास। और एक दिन अचानक ही तुम विवाहित होते हो, संपूर्ण सृष्टि से मिलन होता है और सारे वियोग मिट जाते हैं। और उस मिलन में ही आनंद है। इस अलगाव में पीड़ा है, क्योंकि यह अलगाव झूठा है। अलगाव है, क्योंकि तुम्हें बोध नहीं है। तुम्हारे अज्ञान में ही उसका अस्तित्व है। यह एक स्वप्न की भांति है।

तुम सोए हुए होः फिर तुम स्वप्न देखते हो हजारों चीजों के, और सुबह वे सभी तिरोहित हो जाती हैं। और अचानक तुम हंसने लगते हो स्वयं पर ही। सारी बात ही इतनी बेतुकी मालूम पड़ती है। तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा हुआ कैसे! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि तुम भ्रांति में कैसे पड़ गए, जैसे कि वह सब वास्तविक हो! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा कैसे संभव हुआ कि तुम मन में तैरते उन चित्रों द्वारा इतने अभिभूत हो गए! वे विचारों के बुदबुदों के सिवाय और कुछ नहीं थे। और वे कैसे लगते थे—यथार्थ, ठोस, और वास्तविक!

ऐसा ही घटता है जब कोई सत्य के अनुभव में उतरता है! लेकिन सत्य जाना जाता है गहरी सहभागिता द्वारा। यदि तुम सहभागी नहीं होते तो तुम सत्य को बाहर-बाहर से ही जानोगे, किसी अजनबी की भांति, किसी बाहरी व्यक्ति की भांति। तुम इस घर के पास आ सकते हो; तुम घर के चारों तरफ घूम सकते हो; और तुम घर के बारे में कुछ बातें जान भी लोगे। लेकिन तुम घूमते रहे बाहर ही, सतह पर ही। तुमने दीवारों को बाहर से ही देखा। तुम घर को भीतर से नहीं जानते। कभी-कभी, रात के अंधेरे में आए चोर की भांति, तुम घर में प्रवेश भी कर सकते हो।

कवि चोर होता है। वैज्ञानिक अजनबी बना रहता है। धार्मिक आदमी मेहमान होता है; वह रात के अंधेरे में नहीं आता हैः वह घर में चोरी से नहीं आता है। हालांकि कुछ बातों को चोर की भांति भी जाना जा सकता है, इसलिए कवि बेहतर होगा उस वैज्ञानिक व्यक्ति से जो कि बाहर-बाहर ही घूमता रहा और कभी भीतर नहीं आया। तो कवि भी थोड़ा-बहुत जान लेगा जिसे एक वैज्ञानिक कभी नहीं जान सकता, क्योंकि कवि प्रवेश कर चुका है घर में—चाहे रात में ही सही, अंधेरे में ही सही; चाहे अनिमंत्रित ही, अतिथि के रूप में नहीं, सामने के द्वार से नहीं।

धार्मिक आदमी घर में प्रविष्ट होता है अतिथि की भांति। वह उसे अर्जित करता है। और वह न केवल घर के बारे में ही जानता है, बल्कि मालिक के बारे में भी जानता है—क्योंकि वह मेहमान होता है। वह न केवल उस भौतिक घर के बारे में जानता है, बल्कि वह उस अभौतिक मालिक के बारे में भी जानता है जो कि वस्तुतः केंद्र है घर का। वह घर के मालिक को भी जानता है।

विज्ञान जानता है केवल पदार्थ को। कला को कई बार झलकें मिलती हैं अभौतिक की। क्योंकि चोर भी देख सकता है मालिक को, लेकिन मालिक सोया हुआ होगा। वह भी देख सकता है उसका चेहरा, लेकिन केवल अंधकार में, क्योंकि वह भयभीत होता है, सदा भयभीत होता है कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए। वह चोर होता है और सदा भयभीत होता है और कंप रहा होता है। लेकिन जब तुम घर में अतिथि की भांति आमंत्रित होकर आते हो, तुमने उसे अर्जित किया होता है, तो मालिक तुम्हारा आलिंगन करता है; तुम्हारा स्वागत करता है। तब तुम जानते हो सत्य के अंतरतम केंद्र को।

भारत में हमारे पास कवि के लिए दो शब्द हैं। किसी अन्य भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं हैं, क्योंकि कोई जरूरत नहीं पड़ी। एक ही शब्द पर्याप्त होता है। वही इशारा कर देता है काव्य की घटना की तरफ—'कवि' पर्याप्त है। लेकिन संस्कृत में हमारे पास दो शब्द हैंः 'कवि' और 'ऋषि'। और भेद बहुत सूक्ष्म है और समझने जैसा है। 'कवि' वह है जो चोर की भांति आता है। वह सहभागी तो होता है, इसलिए वह कवि है। लेकिन उसका ज्ञान होता है टुकड़ों में। किन्हीं खास क्षणों

में...जैसे कि कोई चोर घर के भीतर हो और अचानक आकाश में बिजली कौंध जाए और वह सारे घर को भीतर से भी देख सके—लेकिन ऐसा होता है क्षण भर को ही। फिर बिजली खो जाती है और हर चीज स्वप्नवत हो जाती है।

तो कभी-कभी कवि का सामना हो जाता है सत्य से, लेकिन इसी तरह जैसे कि उसने उसे अर्जित न किया हो। इसीलिए कई बार आश्चर्य करोगे तुम; तुम किसी की कविता पढ़ते हो—कोई भी कविता, किसी की भी—वह तुम्हें छूती है, तुम्हारे हृदय में उतर जाती है, तुम आंदोलित हो जाते हो और तुम मिलना चाहते हो इस आदमी से जिसमें कि ये पंक्तियां अवतरित हुई हैं। लेकिन जब तुम उस आदमी से, उस कवि से मिलते हो, तो तुम्हें निराशा होती है—वह एकदम सामान्य आदमी होता है—साधारण, कुछ खास नहीं। अपनी कविता की उड़ान में वह बड़ा असाधारण था, लेकिन यदि तुम मिलते हो उस कवि से तो वह साधारण ही होता है। क्या हुआ? तुम नहीं मान सकते कि ऐसा सुंदर काव्य पैदा हो सकता है एक साधारण आदमी से!

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कवि कोई स्थायी निवासी नहीं होता मंदिर का। वह चोर होता है। कई बार वह प्रवेश करता है, लेकिन अंधेरे में ही। निश्चित ही, चारों ओर घूमने से तो बेहतर है यह; कम से कम उसे एक झलक तो मिलती है। बस वह उस झलक के गीत गाता है। उसके हृदय में सतत एक टीस बनी रहती है उस आंतरिक झलक के लिए जिसे उसने एक बार देखा है। वह फिर-फिर उसी के गीत गाता है, लेकिन अब यह उसका अनुभव नहीं है। यह अतीत की बात हो गई—एक स्मृति, एक स्मरण, कोई वास्तविकता नहीं।

'ऋषि' वह कवि है जिसका स्वागत हुआ है मेहमान की भांति। ऋषि शब्द का अर्थ है द्रष्टा, और कवि शब्द का भी अर्थ है द्र ष्टा। उन दोनों का ही अर्थ होता है: वह जिसने कि देख लिया। तो भेद क्या है? भेद यह है कि ऋषि ने उसे अर्जित किया होता है। वह दिन के प्रकाश में प्रविष्ट हुआ घर में; वह सामने के दरवाजे से प्रविष्ट हुआ। वह कोई अनिमंत्रित मेहमान नहीं है; वह किसी दूसरे के घर में अनधिकार प्रवेश नहीं कर रहा है। वह निमंत्रित है। मालिक ने उसका स्वागत किया। वह भी गीत गाता है, लेकिन उसका गीत पूरी तरह से अलग होता है साधारण कवि से।

उपनिषद ऐसे ही गीत हैं, वेद ऐसे ही गीत हैं—वे आए हैं ऋषियों के हृदयों से। वे कोई साधारण कवि न थे, वे असाधारण कवि थे। असाधारण इस अर्थ में कि उन्होंने अर्जित किया था उस झलक को; वह कोई चुराई हुई चीज न थी। लेकिन ऐसा केवल तभी संभव होता है जब तुम सीख लेते हो कि पूरे प्राणों से सहभागी कैसे होना है—यही है योग। योग का अर्थ है सम्मिलन; योग का अर्थ है विवाह; योग का अर्थ है जोड़। योग का अर्थ है: फिर से निकट कैसे आना, पृथकता को कैसे मिटा देना, सारी सीमाओं को कैसे विलीन कर देना, उस अवस्था तक कैसे आ जाना जहां ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाएं। यही है योग की खोज।

इन थोड़े से दशकों में विज्ञान और-और सजग हुआ है कि सारा ज्ञान व्यक्तिगत होता है। योग कहता है कि ज्ञान मात्र व्यक्तिगत होता है और जितना ज्यादा व्यक्तिगत होता है, उतना बेहतर होता है। तुम्हें उससे एकात्म हो जाना होगा: तुम्हें फूल हो जाना होगा; तुम्हें चट्टान हो जाना होगा; तुम्हें चांद हो जाना होगा; तुम्हें सागर, रेत हो जाना होगा। तुम जहां कहीं देखो, तुम्हें विषय और विषयी दोनों हो जाना होगा। तुम्हें सम्मिलित होना होगा। तुम्हें सहभागी होना होगा। केवल तभी जीवन स्पंदित होता है, जीवन अपनी लय के साथ स्पंदित होता है। तब तुम उस पर कुछ आरोपित नहीं कर रहे होते।

विज्ञान आक्रमण है, कविता चोरी है और धर्म सहभागिता है।

अब हम पतंजलि के इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें।

दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है—प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता। और द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु वह होता है।

पहली बात जो समझने जैसी है वह यह है कि यह संसार इसलिए है ताकि तुम्हें मुक्ति फलित हो सके। बहुत बार यह प्रश्न उठा है तुम में: 'यह संसार क्यों है? इतनी ज्यादा पीड़ा क्यों है? यह सब किसलिए है? इसका प्रयोजन क्या है?' बहुत से

लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं, 'यह मूलभूत प्रश्न है कि हम आखिर हैं ही क्यों? और अगर जीवन इतनी पीड़ा से भरा है, तो प्रयोजन क्या है इसका? यदि परमात्मा है, तो वह इस सारी की सारी अराजकता को मिटा क्यों नहीं देता? क्यों नहीं वह मिटा देता इस सारे दुख भरे जीवन को, इस नरक को? क्यों वह लोगों को विवश किए चला जाता है इस में जीने के लिए?'

योग के पास उत्तर है। पतंजलि कहते हैं, 'द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।' यह एक प्रशिक्षण है। पीड़ा एक प्रशिक्षण है, क्योंकि बिना पीड़ा के परिपक्व होने की कोई संभावना नहीं। यह आग है, सोने को शुद्ध होने के लिए इसमें से गुजरना ही होगा। यदि सोना कहे, क्यों? तो सोना अशुद्ध और मूल्यहीन ही बना रहता है। केवल आग से गुजरने पर ही वह सब जल जाता है जो कि सोना नहीं होता और केवल शुद्धतम स्वर्ण बच रहता है। मुक्ति का कुल मतलब इतना ही है: एक परिपक्वता, इतना चरम विकास कि केवल शुद्धता, केवल निर्दोषता ही बचती है, और वह सब जो कि व्यर्थ था, जल जाता है।

इसे जानने का कोई और उपाय नहीं है। कोई और उपाय हो भी नहीं सकता इसे जानने का। यदि तुम जानना चाहते हो कि तृप्ति क्या है, तो तुम्हें भूख को जानना ही होगा। यदि तुम बचना चाहते हो भूख से, तो तुम तृप्ति से भी बच जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि गहन तृप्ति क्या होती है, तो तुम्हें जानना होगा प्यास को, गहन प्यास को। यदि तुम कहते हो, 'मैं नहीं चाहता मुझे प्यास लगे', तो तुम प्यास के बुझने की, उस गहन तृप्ति की सुंदर घड़ी को चूक जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि प्रकाश क्या है, तो तुम्हें गुजरना ही पड़ेगा अंधेरी रात से। अंधेरी रात तुम्हें तैयार करती है जानने के लिए कि प्रकाश क्या है। यदि तुम जानना चाहते हो कि जीवन क्या है, तो तुम्हें गुजरना होगा मृत्यु से। मृत्यु तुम में जीवन को जानने की संवेदनशीलता निर्मित करती है।

वे विपरीत नहीं हैं, वे परिपूरक हैं। ऐसा कुछ नहीं है संसार में जो कि विपरीत हो; हर चीज परिपूरक है। 'यह' संसार अस्तित्व रखता है ताकि तुम जान सको 'उस' संसार को। 'इसका' अस्तित्व है 'उसको' जानने के लिए। भौतिक है आध्यात्मिक को जानने के लिए; नरक है स्वर्ग तक आने के लिए। यही है प्रयोजन। और यदि तुम एक से बचना चाहते हो तो तुम दोनों से बच जाओगे, क्योंकि वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक बार तुम इसे समझ लेते हो तो कोई पीड़ा नहीं रहती: तुम जानते हो कि यह एक प्रशिक्षण है, एक अनुशासन है। अनुशासन कठिन होता है। कठिन होगा ही, क्योंकि केवल तभी उससे सच्ची परिपक्वता आएगी।

योग कहता है कि यह संसार एक ट्रेनिंग स्कूल की भांति है, एक पाठशाला। इससे बचो मत और इससे भागने की कोशिश मत करो। बल्कि जीओ इसे, और इसे इतनी समग्रता से जीओ कि इसे फिर से जीने को विवश न होना पड़े तुम्हें। यही है अर्थ जब हम कहते हैं कि एक बुद्ध पुरुष कभी वापस नहीं लौटता। कोई जरूरत नहीं रहती। वह गुजर गया जीवन की सभी परीक्षाओं से। उसके लौटने की जरूरत न रही।

तुम्हें फिर-फिर उसी जीवन में लौटने को विवश होना पड़ता है, क्योंकि तुम सीखते नहीं। बिना सीखे ही तुम अनुभव की पुनरुक्ति किए चले जाते हो। तुम फिर-फिर दोहराते रहते हो वही अनुभव—वही क्रोध। कितनी बार, कितने हजारों बार तुम क्रोधित हुए हो? जरा गिनो तो। क्या सीखा तुमने इससे? कुछ भी नहीं। फिर जब कोई स्थिति आ जाएगी तो तुम फिर से क्रोधित हो जाओगे—बिलकुल उसी तरह जैसे कि तुम्हें पहली बार क्रोध आ रहा हो!

कितनी बार तुम पर कब्जा कर लिया है लोभ ने, कामवासना ने? फिर कब्जा कर लेंगी ये चीजें। और फिर तुम प्रतिक्रिया करोगे उसी पुराने ढंग से—जैसे कि तुमने न सीखने की ठान ही ली हो। और सीखने के लिए राजी होने का अर्थ है योगी होने के लिए राजी होना। यदि तुमने न सीखने का ही तय कर लिया है, यदि तुम आंखों पर पट्टी ही बांधे रखना चाहते हो, यदि तुम फिर-फिर दोहराए जाना चाहते हो उसी नासमझी को, तो तुम वापस फेंक दिए जाओगे। तुम वापस भेज दिए जाओगे उसी कक्षा में जब तक कि तुम उत्तीर्ण न हो जाओ।

जीवन को किसी और ढंग से मत देखना। यह एक विराट पाठशाला है, एकमात्र विश्वविद्यालय है। 'विश्वविद्यालय' शब्द आया है 'विश्व' से। असल में किसी विश्वविद्यालय को स्वयं को विश्वविद्यालय नहीं कहना चाहिए। यह नाम तो बहुत

विराट है। संपूर्ण विश्व ही है एकमात्र विश्वविद्यालय। लेकिन तुमने बना लिए हैं छोटे-छोटे विश्वविद्यालय और तुम सोचते हो कि जब तुम वहां से उत्तीर्ण होते हो तो तुम जान गए सब, जैसे कि तुम बन गए ज्ञानी!

नहीं, ये छोटे-मोटे मनुष्य-निर्मित विश्वविद्यालय न चलेंगे। तुम्हें इस विराट विश्वविद्यालय से जीवन भर गुजरना होगा।

पतंजलि कहते हैं, '...अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो...।'

अनुभव मुक्ति लाता है। जीसस ने कहा है, 'सत्य को जान लो और सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा।' जब भी तुम किसी बात को सजग होकर, होशपूर्वक, पूरी तरह ध्यान देते हुए अनुभव करते हो कि क्या घट रहा है—ध्यान दे रहे होते हो और साथ-साथ सहभागी हो रहे होते हो—तो वह अनुभव मुक्तिदायी होता है। तुरंत कोई चीज उमगती है उसमें सेः एक अनुभव, जो सत्य बन जाता है। तुमने उसे शास्त्रों से उधार नहीं लिया होता; तुमने उसे किसी दूसरे से उधार नहीं लिया होता। अनुभव उधार नहीं लिया जा सकता; केवल सिद्धांत उधार लिए जा सकते हैं।

इसीलिए सारे सिद्धांत गंदे होते हैं, क्योंकि वे बहुत से हाथों से गुजरते रहते हैं—लाखों हाथों से। वे गंदे नोटों की भांति होते हैं। अनुभव सदा ताजा होता है—सुबह की ओस जैसा ताजा, सुबह खिले गुलाब की भांति ताजा। अनुभव सदा निर्दोष और कुंआरा होता है, किसी ने कभी छुआ नहीं है उसे। तुम पहली बार उसके सामने आए हो। तुम्हारा अनुभव तुम्हारा है, वह किसी दूसरे का नहीं है, और कोई उसे दे नहीं सकता तुम्हें।

बुद्ध पुरुष मार्ग दिखा सकते हैं, लेकिन चलना तो तुम्हें ही है। कोई बुद्ध पुरुष तुम्हारी जगह नहीं चल सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। कोई बुद्ध पुरुष अपनी आंखें तुम्हें नहीं दे सकता कि तुम उनके द्वारा देख सको। और यदि कोई बुद्ध पुरुष तुम्हें आंखें दे भी दे, तो तुम बदल दोगे आंखों को—आंखें तुम्हें न बदल पाएंगी। जब आंखें तुम्हारे ढांचे में बिठाई जाएंगी, तो तुम्हारा ढांचा आंखों को ही बदल देगा, लेकिन आंखें तुम्हें नहीं बदल सकतीं। वे अंश हैं; तुम एक बहुत बड़ी घटना हो।

मैं अपना हाथ तुम्हें उधार नहीं दे सकता। यदि मैं दूं भी, तो स्पर्श मेरा न रहेगा, वह तुम्हारा होगा। जब तुम छुओगे और स्पर्श करोगे कुछ—चाहे मेरे हाथ द्वारा ही—तो वह तुम्हीं स्पर्श कर रहे होओगे, मेरा हाथ न होगा। सत्य को उधार पाने की कोई संभावना नहीं है। अनुभव मुक्त करता है।

रोज मुझसे लोग मिलते हैं और कहते हैं, 'कैसे कोई क्रोध से मुक्त हो? कैसे कोई काम से, वासना से मुक्त हो? कैसे कोई मुक्त हो इससे, कैसे कोई मुक्त हो उससे?' और जब मैं कहता हूं, 'इसे जीओ', तो उन्हें धक्का लगता है। वे मेरे पास आए थे उन बातों का दमन करने की किसी विधि की खोज में। और यदि वे भारत में किसी दूसरे गुरु के पास गए होते तो उन्हें अपना दमन करने के लिए कोई न कोई विधि मिल गई होती। लेकिन दमन कभी मुक्ति नहीं बन सकता, क्योंकि दमन का अर्थ है अनुभव से बचना। दमन का अर्थ है अनुभव की तमाम जड़ों को ही काट देना। दमन कभी भी मुक्ति नहीं बन सकता। दमन सब से बड़ा बंधन है जो तुम कहीं पा सकते हो। तुम जीते हो एक पिंजरे में।

अभी एक दिन एक नए संन्यासी ने मुझसे कहा, 'मैं पिंजरे में बंद जानवर जैसा अनुभव करता हूं।' इसकी पूरी संभावना है कि उसका मतलब यही था कि वह चाहता था कि मैं उसकी मदद करूं ताकि जानवर मर जाए, क्योंकि हम 'जानवर' तभी कहते हैं जब हम निंदा करते हैं। वह शब्द ही निंदित है। लेकिन जब मैंने संन्यासी से कहा, 'हां, मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैं तोड़ दूंगा पिंजरा और पूरी तरह स्वतंत्र कर दूंगा जानवर को,' तो उसे थोड़ा धक्का लगा; क्योंकि जब तुम कहते हो जानवर, तो तुमने उसकी निंदा, उसका मूल्यांकन कर ही दिया होता है। यह कोई महज तथ्य नहीं है। पशु या पशुता शब्द में ही तुमने वह सब कुछ कह दिया जो तुम कहना चाहते थे। तुम उसे स्वीकार नहीं करते। तुम उसे जीना नहीं चाहते।

इसीलिए तुमने पिंजरा बना लिया है। वह पिंजरा है—चरित्र। सारे चरित्र पिंजरे हैं, कारागृह हैं, तुम्हारे चारों ओर बंधी जंजीरें हैं। और चरित्र वाला आदमी कैदी आदमी है। वास्तविक रूप से जागा हुआ व्यक्ति चरित्र वाला व्यक्ति नहीं होता है। वह जीवंत होता है। वह पूरी तरह जागा हुआ होता है, लेकिन उसका कोई चरित्र नहीं होता, क्योंकि उसके आस-पास कोई पिंजरा नहीं होता। वह सहजस्फूर्त भाव से जीता है। वह जागा हुआ जीता है इसलिए कोई गलती नहीं हो सकती, लेकिन उसकी सुरक्षा के लिए कोई पिंजरा नहीं होता आस-पास।

पिंजरा सजगता का झूठा विकल्प है। यदि तुम सोए-सोए जीना चाहते हो तो तुम्हें चरित्र की जरूरत है, ताकि चरित्र तुम्हें मार्ग-निर्देश दे सके। तब तुम्हें सजग रहने की जरूरत नहीं होती। जैसे, तुम कोई चीज चुराने ही वाले हो—कि चरित्र एकदम रोक देता है तुम्हें: वह कहता है, 'नहीं! यह गलत है! यह पाप है! तुम सड़ोगे नरक में! क्या तुम भूल गए सारी बाइबिल? क्या तुम भूल गए सभी दंड जिन्हें भुगतना पड़ता है आदमी को?' यह है चरित्र। यह रोक देता है तुम्हें। तुम चोरी करना चाहते हो, चरित्र एक रुकावट बन जाता है।

सजग व्यक्ति भी चोरी नहीं करेगा, लेकिन यह उसका चरित्र नहीं है; और यही है चमत्कार और सौंदर्य। उसके पास कोई चरित्र नहीं है और फिर भी वह चोरी नहीं करेगा, क्योंकि उसके पास बोध है। ऐसा नहीं है कि वह भयभीत है पाप से—पाप जैसा कुछ है ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा कह सकते हो कि गलतियां हैं। पाप जैसा तो कुछ है ही नहीं। वह दंड से भयभीत नहीं है, क्योंकि दंड कहीं भविष्य में नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि पापों के लिए दंड मिलता है। असल में पाप ही दंड है।

ऐसा नहीं है कि तुम आज क्रोधित होते हो और दंड तुम्हें कल मिलेगा या अगले जन्म में मिलेगा—कोरी बकवास है यह सब। तुम अपना हाथ आग में अभी डालते हो, तो क्या सोचते हो कि वह अगले जन्म में जलेगा? जब तुम अपना हाथ आग में डालते हो, तो वह अभी जलता है; वह तत्क्षण जलता है। हाथ का वहां रखा जाना और उसका जल जाना साथ-साथ घटता है। एक क्षण का भी अंतराल नहीं होता। जीवन का भविष्य में कोई विश्वास नहीं, क्योंकि जीवन केवल वर्तमान में है। ऐसा नहीं है कि पापों की सजा भविष्य में मिलेगी, पाप ही सजा हैं। सजा अंतर्निहित है: तुम चोरी करते हो और तुम्हें सजा मिल जाती है। उस चोरी करने में ही तुम सजा पाते हो—क्योंकि तुम ज्यादा बंद हो जाते हो: तुम ज्यादा भयभीत हो जाओगे; तुम संसार का सामना न कर पाओगे। निरंतर तुम एक अपराध-भाव अनुभव करोगे, कि तुमने कुछ गलत किया है, किसी भी घड़ी तुम पकड़े जा सकते हो। तुम पकड़े ही गए हो! हो सकता है कभी किसी ने तुम्हें पकड़ा न हो और किसी न्यायालय ने तुम्हें कभी सजा न दी हो—और कहीं कोई पारलौकिक न्यायालय नहीं है—लेकिन फिर भी तुम पकड़े गए हो। तुम स्वयं के द्वारा ही पकड़े गए हो। इसे कैसे भूल पाओगे तुम? कैसे तुम क्षमा करोगे स्वयं को? कैसे तुम उस बात को अनकिया कर दोगे जिसे कि तुमने किया है? वह तुम्हारे चारों ओर छाई रहेगी। यह बात छाया की भांति तुम्हारा पीछा करेगी। किसी प्रेत की भांति यह तुम्हारे पीछे पड़ी रहेगी। यह स्वयं ही एक सजा है।

तो चरित्र तुम्हें गलत बातें करने से रोकता है, लेकिन वह तुम्हें उनके बारे में सोचने से नहीं रोक सकता। लेकिन चोरी करना या उसके बारे में सोचना एक ही बात है। सचमुच हत्या कर देना और उसके बारे में सोचना एक ही बात है। क्योंकि जहां तक तुम्हारी चेतना का प्रश्न है तुमने वह बात कर ही दी है—यदि तुमने उसके बारे में सोचा है। वह कृत्य न बनी क्योंकि चरित्र ने तुम्हें रोक लिया; यदि चरित्र वहां न होता तो वह बात कृत्य बन गई होती।

तो असल में चरित्र ज्यादा से ज्यादा यही करता है: वह रोक लगा देता है विचार पर; वह उसे कृत्य में नहीं बदलने देता। यह समाज के लिए ठीक है, लेकिन तुम्हारे लिए जरा भी ठीक नहीं है। यह समाज की सुरक्षा करता है; तुम्हारा चरित्र समाज की सुरक्षा करता है। तुम्हारा चरित्र दूसरों की सुरक्षा करता है, बस इतना ही। इसीलिए प्रत्येक समाज जोर देता है चरित्र पर, नैतिकता पर, ऐसी ही चीजों पर; लेकिन वह तुम्हारी सुरक्षा नहीं करता।

तुम्हारी सुरक्षा केवल होश में हो सकती है। और यह होश कैसे पाया जाता है? दूसरा कोई रास्ता नहीं सिवाय इसके कि जीवन को उसकी समग्रता में जीया जाए।

'द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।'

'दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है...।'

तीन गुण। योग तीन गुणों में विश्वास करता है: सत्व, रजस, तमस। सत्व वह गुण है जो चीजों को स्थिर बनाता है; रजस वह गुण है जो सक्रियता देता है; और तमस का गुणधर्म है अक्रिया। ये तीन आधारभूत गुण हैं। इन तीनों के द्वारा यह सारा संसार अस्तित्व में है। यह है योग की त्रिमूर्ति।

अब भौतिकशास्त्री भी योग के साथ राजी होने को तैयार हो गए हैं। उन्होंने परमाणु को तोड़ लिया है और उन्हें पता चला है तीन चीजों का: इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोट्रान। ये तीनों वही तीन गुण हैं: एक की गुणवत्ता है प्रकाश की—सत्व, स्थिरता;

दूसरे की गुणवत्ता है रजस की—क्रिया, ऊर्जा, शक्ति; और तीसरे की गुणवत्ता है अक्रिया की—तमस। सारा संसार बना है इन तीन गुणों से; और इन तीन गुणों से गुजरना पड़ता है सजग व्यक्ति को। उसे अनुभव लेना होता है इन तीनों गुणों का। और यदि तुम उनको एक लयबद्धता में अनुभव करते हो, जो कि वास्तविक अनुशासन है योग का...।

हर कोई इन्हें अनुभव करता हैः कई बार तुम आलस्य अनुभव करते हो, कई बार तुम ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करते हो; कई बार तुम अच्छा और हलका अनुभव करते हो, और कई बार तुम अशुभ और बुरा अनुभव करते हो; कई बार तुम अंधकार होते हो और कई बार तुम सुबह का उजाला होते हो। तुम्हें प्रतीति होती है इन तीनों गुणों की। उनकी घड़ियां निरंतर आती रहती हैं; तुम एक चक्र में घूमते रहते हो; लेकिन वे अनुपात में नहीं होते।

एक आलसी आदमी नब्बे प्रतिशत आलसी होता है। वह सक्रिय भी होता है—उसे होना ही पड़ेगा, क्योंकि आलस्य का जीवन जीने के लिए भी उसे थोड़ा काम तो करना होगा। उसकी सारी सक्रियता बस इतनी ही होती है—उसकी निष्क्रियता को सहारा देने के लिए। और उसे लोगों के साथ थोड़ा भला भी रहना पड़ता है, अन्यथा तो लोग बहुत ही बुरी तरह पेश आएंगे उसके साथ। लोग बरदाश्त नहीं करेंगे उसकी निष्क्रियता को।

क्या तुमने ध्यान दिया? जो लोग बहुत सक्रिय नहीं होते...उदाहरण के लिए, बहुत मोटे लोग सदा मुस्कुराते रहते हैं। यह बात उनके लिए एक रक्षा-कवच होती है। वे जानते हैं कि वे लड़ नहीं सकते। वे जानते हैं कि यदि लड़ाई हो जाए तो वे बच कर भाग नहीं सकते, दौड़ नहीं सकते। तुम बहुत मोटे लोगों को सदा मुस्कुराते हुए देखते हो—प्रसन्न! कारण क्या है? क्यों पतले व्यक्ति दुखी मालूम पड़ते हैं, और क्यों मोटे व्यक्ति कभी बहुत दुखी नहीं मालूम पड़ते, सदा प्रसन्न दिखते हैं?

मनस्विद और शरीर-शास्त्री कहते हैं कि यह बात मोटे व्यक्ति के लिए एक सुरक्षा है, क्योंकि जीवन-संघर्ष में उनके लिए सदा लड़ने की भाव-दशा में रहना बहुत कठिन होगा, जिसमें कि दुबले-पतले लोग सदा ही रहते हैं। वे लड़ सकते हैं—यदि दूसरा आदमी कमजोर है तो वे पीट देंगे उसे; यदि दूसरा आदमी शक्तिशाली है तो वे बच कर भाग निकलेंगे। वे दोनों बातें कर सकते हैं, और मोटा आदमी इन दोनों में से कुछ भी नहीं कर सकता, तो वह मुस्कुराता रहता है; वह हर किसी के साथ अच्छा बना रहता है। यह उसकी सुरक्षा है, ताकि दूसरे उसके साथ अच्छा व्यवहार करें।

आलसी व्यक्ति सदा भले होते हैं। उन्होंने कभी कोई पाप नहीं किया, क्योंकि पाप करने के लिए भी व्यक्ति को थोड़ा सक्रिय होना पड़ता है। तुम किसी आलसी आदमी को हिटलर नहीं बना सकते; असंभव है। तुम किसी आलसी आदमी को नेपोलियन या सिकंदर नहीं बना सकते। यह असंभव है। आलसी आदमियों ने कोई बड़ा पाप नहीं किया है; वे कर नहीं सकते। एक तरह से वे बहुत भले लोग होते हैं, क्योंकि पाप करने के लिए भी उन्हें सक्रिय होना होगा—वह बात उनके अनुकूल नहीं पड़ती।

फिर सक्रिय व्यक्ति हैं, असंतुलित; वे सदा कुछ न कुछ करते रहते हैं। उन्हें कहीं पहुंचने की कोई चिंता नहीं होती; उन्हें केवल यही चिंता होती है कि तेजी से चलते रहें। उन्हें बिलकुल चिंता नहीं होती कि वे कहीं पहुंच रहे हैं या नहीं—इसका कोई सवाल ही नहीं है। यदि वे तेजी से चल रहे हैं तो फिर ठीक है। मत पूछना कि 'कहां जा रहे हो तुम?' वे कहीं नहीं जा रहे हैं; वे तो बस जा रहे हैं। उनका कोई लक्ष्य नहीं है। उनके पास केवल ऊर्जा है कुछ न कुछ करते रहने के लिए। ये लोग संसार के खतरनाक लोग हैं—आलसी लोगों से ज्यादा खतरनाक। इस दूसरी श्रेणी से ही आए हैं सारे एडोल्फ हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन, सिकंदर। सारे उपद्रवी आते हैं इस दूसरी श्रेणी से, क्योंकि उनके पास ऊर्जा होती है—एक बेचैन ऊर्जा।

फिर तीसरी तरह के लोग हैं, जिन्हें ढूंढ़ निकालना दुर्लभ हैः कहीं कोई लाओत्सु बैठा होता है मौन—अकर्मण्य नहीं—निश्चेष्ट। न सक्रिय, न अकर्मण्य—निष्क्रिय; ऊर्जा से भरा-पूरा, एक ऊर्जा-कुंड, लेकिन मौन बैठा हुआ। क्या तुमने ध्यान से देखा है किसी को शांत-मौन बैठे हुए, ऊर्जा से आपूरित? तुम एक आभामंडल अनुभव करते हो उसके चारों ओर, जीवंतता से दीप्तिमान, लेकिन फिर भी शांत—कुछ न करते हुए, मात्र होने में थिर।

और योग है इन तीनों के बीच संतुलन पा लेना। यदि तुम इन तीनों के बीच संतुलन पा लो तो अचानक तुम इनके पार चले जाते हो। यदि कोई एक गुण ज्यादा होता है बाकी दो गुणों से तो वही तुम्हारी समस्या बन जाता है। यदि तुम सक्रिय कम और

आलसी ज्यादा हो तो आलस्य तुम्हारी समस्या बन जाएगा : तुम उसके द्वारा पीड़ा पाओगे। यदि सक्रियता ज्यादा है आलस्य से तो तुम अपनी सक्रियता द्वारा दुख पाओगे। और तीसरा कभी ज्यादा नहीं होता, वह सदा कम ही होता है; लेकिन यदि यह सिद्धांततः संभव भी हो—कि कोई जरूरत से ज्यादा अच्छा हो—तो यह बात भी एक दुख बन जाएगी उसके लिए, यह भी एक असंतुलन निर्मित करेगी। एक सम्यक जीवन संतुलन का जीवन होता है।

बुद्ध के पास आठ सिद्धांत हैं अपने शिष्यों के लिए। प्रत्येक सिद्धांत के आगे वे जोड़ देते हैं एक शब्द—सम्यक। यदि वे कहते हैं 'होशपूर्ण होओ' तो केवल 'स्मृति' नहीं कहते; वे कहते हैं, 'सम्यक स्मृति'। अंग्रेजी में सदा इसका अनुवाद किया जाता रहा है 'राइट मेमोरी'। यदि वे कहते 'श्रम', तो वे सदा यही कहते, 'सम्यक श्रम'। 'सम्यक' का अर्थ है संतुलन। 'सम्यक' का अर्थ है समता। समाधि के लिए भी, ध्यान के लिए भी बुद्ध कहते हैं, 'सम्यक समाधि'। समाधि भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी। अच्छाई भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी।

समता मुख्य तत्व होना चाहिए। जो कुछ भी करो, तुम सदा संतुलित रहना रस्सी पर चलते आदमी की भांति, निरंतर संतुलन बनाए रखना। यही है सम्यकत्व, संतुलन का तत्व। वह व्यक्ति जो परम मिलन को, परम योग को उपलब्ध होना चाहता है, उसे गहन संतुलन में रहना होता है। संतुलन में तुम तीनों गुणों के पार चले जाते हो। तुम गुणातीत हो जाते हो : तुम इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हो। तुम अब इस संसार के हिस्से नहीं रहते; तुम इसके पार चले जाते हो।

ये तीन गुण—प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता—इनकी चार अवस्थाएं हैं : निश्चित, अनिश्चित, सांकेतिक और अव्यक्त।

इन तीनों गुणों की चार अवस्थाएं हैं। पहली को पतंजलि कहते हैं, निश्चित। तुम इसे पदार्थ कह सकते हो; यह तुम्हारे आस-पास की सर्वाधिक निश्चित चीज है। फिर है अनिश्चित; तुम इसे मन कह सकते हो; वह भी वहां है, निरंतर तुम्हें उसकी अनुभूति होती है, फिर भी वह एक अनिश्चित तत्व है। तुम निश्चित नहीं कह सकते कि मन क्या है। तुम जानते हो उसे, तुम निरंतर जीते हो उसे, लेकिन तुम उसे परिभाषित नहीं कर सकते। पदार्थ को परिभाषित किया जा सकता है लेकिन मन को नहीं। और फिर है 'सांकेतिक'। अनिश्चित से भी ज्यादा सूक्ष्म है सांकेतिक : यह है आत्मा। तुम केवल संकेत दे सकते हो उसका। तुम यह भी नहीं कह सकते कि वह अपरिभाषित है। यह भी सूक्ष्म ढंग से उसे परिभाषित करना ही हुआ, क्योंकि यह बात भी एक परिभाषा हो जाती है। यह कहना कि कोई चीज अपरिभाषित है—तुमने परोक्ष रूप से उसे परिभाषित कर ही दिया; तुमने कुछ कह ही दिया उसके बारे में। तो यही है अस्तित्व की सूक्ष्म पर्त जो आत्मा है, जो सांकेतिक है। और फिर इसके पार है सूक्ष्मतम, जो है 'अव्यक्त'—असांकेतिक—जो अनात्मा है।

तो पदार्थ, मन, आत्मा, अनात्मा—ये चार अवस्थाएं हैं इन तीन गुणों की।

यदि तुम गहन आलस्य में हो तो तुम पदार्थ की भांति ही हो। आलस्य से भरा आदमी करीब-करीब पदार्थ होता है, जड़ जीवन होता है उसका; तुम उसे जीवंत नहीं देखते। फिर है दूसरा गुण—मन। यदि रजस गुण बहुत ज्यादा हो, तो तुम मन से बहुत ज्यादा भर जाते हो। तब तुम बहुत ज्यादा सक्रिय होते हो—मन निरंतर सक्रिय रहता है, क्रिया से घिरा रहता है, निरंतर नई-नई व्यस्तताओं की खोज में रहता है।

एवरेस्ट की चोटी पर पहुंचने वाले पहले आदमी एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा, 'क्यों? आखिर क्यों आपने इतना खतरा उठाया?' वह कहने लगा, 'क्योंकि एवरेस्ट मौजूद था, तो आदमी को चढ़ना ही था।' वहां कुछ है नहीं...। चांद पर क्यों जा रहा है आदमी? क्योंकि चांद है। कैसे तुम बच सकते हो उससे? तुम्हें जाना ही है। सक्रियता से भरा आदमी निरंतर काम की खोज में रहता है। वह बिना काम के नहीं रह सकता। यह उसकी समस्या है। बिना काम के वह नरक में होता है; काम में तल्लीन होकर वह भूल जाता है स्वयं को।

यदि तमस, अक्रिया बहुत हो, तो तुम पदार्थ की भांति हो जाते हो। यदि रजस बहुत हो तो तुम मन हो जाते हो : मन है सक्रियता। इसीलिए मन पागल हो जाता है। फिर यदि सत्व बहुत ज्यादा हो जाए तो तुम आत्मा हो जाते हो। लेकिन वह भी

एक असंतुलन है। यदि ये तीनों ही संतुलन में हों तो फिर आती है चौथी बातः अनात्मा। वही है तुम्हारा वास्तविक अस्तित्व जहां 'मैं' की अनुभूति भी अस्तित्व नहीं रखती! इसीलिए इसे 'अनात्मा' कहा गया है।
ये हैं चार अवस्थाएं—तीन हैं असंतुलन की और चौथी है संतुलन की। पहली निश्चित है, दूसरी अनिश्चित है, तीसरी सांकेतिक है, चौथी सांकेतिक भी नहीं, अव्यक्त है। और यही चौथी सब से अधिक वास्तविक है। पहली सब से अधिक वास्तविक मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो पहली में। दूसरी बहुत निकट मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो मन में। तीसरी थोड़ी दूर मालूम पड़ती है, लेकिन तुम समझ सकते हो उसे। चौथी तो बिलकुल अविश्वसनीय मालूम पड़ती है—अनात्मा? ब्रह्म कहो, या परमात्मा, या तुम जो भी नाम दे दो इसे, बहुत दूर मालूम पड़ता है, करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है; और जो सबसे ज्यादा सच है।

द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है, फिर भी मन की विकृतियों के माध्यम से वह देखा करता है।

और वह चौथी अवस्था, चाहे तुम उसे उपलब्ध भी हो जाओ—जब तक तुम देह में हो तब तक तुम्हें अपने अस्तित्व की सभी पर्तों का उपयोग करना होगा। बुद्ध भी जब तुम से बात करते हैं तो उन्हें मन के द्वारा ही बात करनी पड़ती है। बुद्ध भी जब चलते हैं तो उन्हें शरीर के द्वारा चलना पड़ता है। लेकिन अब, जब एक बार तुम जान लेते हो कि तुम मन के पार हो, तो मन तुम्हें कभी धोखा नहीं दे सकता। तुम उसका उपयोग कर सकते हो और तुम उसके द्वारा कभी उपयोग नहीं किए जाते। यही अंतर होता है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध मन का उपयोग नहीं करते, वे करते हैं। वे मन का उपयोग करते हैं; मन तुम्हारा उपयोग करता है। ऐसा नहीं है कि वे देह में नहीं जीते हैं, वे जीते हैं। तुम घसिटते हो—देह मालिक होती है और तुम गुलाम होते हो। बुद्ध होते हैं मालिक; देह होती है गुलाम। एक समग्र क्रांति, एक समग्र रूपांतरण घटित होता है—जो ऊपर होता है वह नीचे चला जाता है और जो नीचे होता है वह ऊपर आ जाता है।

दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।

यह योग का या वेदांत का चरम शिखर हैः 'दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।' जब द्रष्टा खो जाता है, तो दृश्य भी खो जाता है, क्योंकि वह तो केवल द्रष्टा के मुक्त होने के लिए ही था। जब मुक्ति घट जाती है तो उसकी आवश्यकता नहीं रहती।
यह बात बहुत से प्रश्न उठा देगी। क्योंकि बुद्ध पुरुष—उनके लिए दृश्य तिरोहित हो चुका है, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। एक फूल है, तुम में से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता हैः उसके लिए वह फूल तिरोहित हो चुका, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। तो यह कैसे संभव है कि किसी के लिए वह तिरोहित हो जाता है और तुम्हारे लिए वह बना रहता है?
यह बिलकुल ऐसा ही हैः रात तुम सभी सो जाते हो, तुम सभी स्वप्न देखने लगते हो; फिर एक आदमी जाग जाता है—उसकी नींद टूट जाती है, उसका स्वप्न खो जाता है—लेकिन बाकी सभी के स्वप्न जारी रहते हैं। उसके स्वप्न के तिरोहित होने की घटना तुम्हारे स्वप्नों के टूटने में किसी प्रकार से मदद नहीं करती; वे चलते रहते हैं। इसीलिए बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। एक व्यक्ति जाग जाता है; बाकी सब अपने-अपने अज्ञान में जीए जाते हैं। वह दूसरों की मदद कर सकता है जाग जाने में। अपनी नींद से तुम बाहर आ सको उसके लिए मदद के उपाय वह तुम्हारे चारों ओर निर्मित कर सकता है, लेकिन जब तक तुम अपनी नींद से बाहर नहीं आ जाते तब तक तुम्हारे स्वप्न बने रहेंगे।
'दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।'

यद्यपि दृश्य उसके लिए मृत हो जाता है जिसने मुक्ति पा ली है, फिर भी बाकी दूसरों के लिए यह जीवित रहता है, क्योंकि यह सर्वनिष्ठ होता है।

भारत में हमने स्वप्न और तुम्हारी तथाकथित वास्तविकता के बीच केवल एक भेद किया है, और यह है वह भेदः कि स्वप्न निजी वास्तविकता हैं और यह वास्तविकता जिसे कि तुम संसार कहते हो एक सार्वजनिक स्वप्न है, बस इतना ही। जब तुम स्वप्न देखते हो तो तुम निजी संसार के स्वप्न देखते हो। रात में तुम निजी संसार को जीते हो; तुम किसी और को नहीं बुला सकते अपने स्वप्न में साझीदार होने के लिए। तुम्हारा निकटतम मित्र या तुम्हारी पत्नी या तुम्हारी प्रेयसी भी बहुत दूर होते हैं। जब तुम स्वप्न देख रहे होते हो तो तुम अकेले ही स्वप्न देख रहे होते हो। तुम किसी को नहीं ले जा सकते वहां; वह एक निजी संसार है। तो फिर यह संसार क्या है? क्योंकि भारत में हम ने इस संसार को भी स्वप्नवत कहा है। यह एक सामूहिक स्वप्न है। हम सब एक साथ स्वप्न देखते हैं, क्योंकि हमारे मन एक ही ढंग से काम करते हैं।

कभी नदी पर जाओ। अपने साथ एक सीधी छड़ी ले जाना। तुम जानते हो कि छड़ी सीधी है। उसे डुबाना नदी मेंः तत्क्षण तुम देखोगे कि वह टेढ़ी हो गई है, मुड़ गई है। बाहर निकालना उसे; तुम देखते हो कि वह सीधी ही है।

परिशिष्ट (1)

अहिंसा

अहिंसा एक अनुभव है, सिद्धांत नहीं। और अनुभव के रास्ते बहुत भिन्न हैं, सिद्धांत को समझने के रास्ते बहुत भिन्न हैं—अक्सर विपरीत। सिद्धांत को समझना हो तो शास्त्र में चले जाएं, शब्द की यात्रा करें, तर्क का प्रयोग करें। अनुभव में गुजरना हो तो शब्द से, तर्क से, शास्त्र से क्या प्रयोजन है? सिद्धांत को शब्द से बिना नहीं जाना जा सकता और अनुभूति शब्द से कभी नहीं पाई गई। अनुभूति पाई जाती है निःशब्द में और सिद्धांत है शब्द में। दोनों के बीच विरोध है। जैसे ही अहिंसा सिद्धांत बन गई वैसे ही मर गई। फिर अहिंसा के अनुभव का क्या रास्ता हो सकता है?

अब महावीर जैसा या बुद्ध जैसा कोई व्यक्ति है तो उसके चारों तरफ जीवन में हमें बहुत कुछ दिखाई पड़ता है। जो हमें दिखाई पड़ता है, उसे हम पकड़ लेते हैंः महावीर कैसे चलते हैं, कैसे खाते हैं, क्या पहनते हैं, किस बात को हिंसा मानते हैं, किस बात को अहिंसा, महावीर के आचरण को देखकर हम निर्णय करते हैं और सोचते हैं कि वैसा। आचरण अगर हम भी बना लें तो शायद जो अनुभव है वह मिल जाए। लेकिन यहां भी बड़ी भूल हो जाती है। अनुभव मिले तो आचरण आता है, लेकिन आचरण बना लेने से अनुभव नहीं आता। अनुभव हो भीतर तो आचरण बदलता है, रूपांतरित होता है। लेकिन आचरण को कोई बदल ले तो अभिनय से ज्यादा नहीं हो पाता। महावीर नग्न खड़े हैं तो हम भी नग्न खड़े हो सकते हैं। महावीर की नग्नता किसी निर्दोष तल पर नितांत सरल हो जाने से आई है। हमारी नग्नता हिसाब से, गणित से, चालाकी से आएगी। हम सोचेंगे नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। तो फिर एक-एक बात को उतारते चले जाएंगे। हम नग्नता का अभ्यास करेंगे। अभ्यास से कभी कोई सत्य आया है? अभ्यास से अभिनय आता है।

एक गांव के पास से मैं गुजर रहा था। एक मित्र संन्यासी हो गए हैं। उनका झोपड़ा पड़ता था पास, तो मैं देखने गया। जंगल में, एकांत में झोपड़ा है। पास पहुंच कर देखा मैंने कि अपने कमरे में वह नग्न टहल रहे हैं। दरवाजा खटखटाया तो देखा वह चादर लपेट का आए हैं। मैंने उनसे पूछाः भूलता नहीं हूं, खिड़की से मुझे लगा कि आप नंगे टहल रहे थे। फिर चादर क्यों पहन ली है? उन्होंने कहाः नग्नता का अभ्यास कर रहा हूं। धीरे-धीरे एक-एक वस्त्र छोड़ता गया हूं। अब अपने कमरे में नग्न रहता हूं। फिर धीरे-धीरे मित्रों में, प्रियजनों में, फिर गांव में, फिर राजधानी में नग्न रहने का इरादा है, धीरे-धीरे नग्नता का अभ्यास कर रहा हूं क्योंकि नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं है।

यह व्यक्ति भी नग्न खड़े हो जाएंगे। महावीर की नग्नता से इनकी नग्नता का क्या संबंध होगा? मैंने उनसे कहा कि संन्यासी होने के बजाय सरकस में भर्ती हो जाओ तो अच्छा है। ऐसे भी संन्यासियों में अधिकतम सरकस में भर्ती होने की योग्यता रखते हैं। अभ्यास से साधी हुई नग्नता का क्या मूल्य है? भीतर निर्दोषता का कोई अनुभव हो, कोई फूल खिले सरलता का और बाहर वस्त्र गिर जाएं और पता न चले तो यह समझ में आ सकता है। लेकिन हमें तो दिखाई पड़ता है आचरण, अनुभव तो दिखाई नहीं पड़ता। महावीर को हमने देखा तो दिखाई पड़ा आचरण। अनुभव तो दिखाई नहीं पड़ सकता। लेकिन महावीर

का आचरण सबको दिखाई पड़ सकता है। फिर हम उस आचरण को पकड़ कर नियम बनाते हैं, संयम का शास्त्र बनाते हैं, अहिंसा की व्यवस्था बनाते हैं और फिर उसे साधना शुरू कर देते हैं। फिर क्या खाना, क्या पीना, कब उठना, कब सोना, क्या करना, क्या नहीं करना—उस सबको व्यवस्थित कर लेते हैं, उसका एक अनुशासन थोप लेते हैं। अनुशासन पूरा हो जाएगा और अहिंसा की कोई खबर न मिलेगी। अनुशासन से अहिंसा का क्या संबंध? सच तो यह यह है कि ऊपर से थोपा गया अनुशासन भीतर की आत्मा को उघाड़ता कम है, ढांकता ज्यादा है। जितना बुद्धिहीन आदमी हो उतना अनुशासन को सरलता से थोप सकता है। जितना बुद्धिमान आदमी हो उतना मुश्किल होगा, उतना वह उस स्रोत की खोज में होगा जहां से आचरण आया छाया की भांति।

इसलिए पहली बात मैंने कहीः अहिंसा अनुभव है। दूसरी बात आपसे कहता हूं कि अहिंसा आचरण नहीं है। आचरण अहिंसा बनता है लेकिन अहिंसा स्वयं आचरण नहीं है। इस घर में हम दिए को जलाएं तो खिड़कियों के बाहर भी रोशनी दिखाई पड़ती है। लेकिन दिया खिड़की के बाहर दिखाई पड़ती रोशनी का ही नाम नहीं है। दिया जलेगा तो खिड़की से रोशनी भी दिखाई पड़ेगी। अब उसके पीछे आने वाली घटना है जो अपने आप घट जाती है।

एक आदमी गेहूं बोता है तो गेहूं के साथ भूसा अपने आप पैदा हो जाता है, उसे पैदा नहीं करना पड़ता। लेकिन किसी को भूसा पैदा करने का खयाल हो और वह भूसा बोने लगे तो फिर कठिनाई शुरू हो जाएगी। बोया गया भूसा भी सड़ जाएगा, नष्ट हो जाएगा। उससे भूसा तो पैदा होने वाला ही नहीं। गेहूं बोया जाता है, भूसा पीछे से अपने-आप साथ-साथ आता है। अहिंसा वह अनुभव है, वह आचरण है जो पीछे से अपने आप आता है, लाना नहीं पड़ता। जिस आचरण को लाना पड़े वह आचरण सच्चा नहीं है। जो आचरण आए, उतरे, प्रकट हो, फैले, पता भी न चले, सहज वही आचरण सत्य है। तो दूसरी बात यह है कि आचरण को साथ कर हम अहिंसा को उपलब्ध न हो सकेंगे। अहिंसा आए तो आचरण भी आ सकता है। फिर अहिंसा कैसे आए? हमें सीधा-सरल यही दिखाई देता है कि जीवन को एक व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा हो जाएगी। लेकिन अमल में जीवन को व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा नहीं होती। चित्त के रूपांतरण से अहिंसा पैदा होती है। और यह रूपांतरण कैसे आए, इसे समझने के लिए दो-तीन बातें समझनी उपयोगी होंगी।

पहला तो यह शब्द अहिंसा बहुत अदभुत है। यह शब्द बिलकुल नकारात्मक है। महावीर प्रेम शब्द का भी प्रयोग कर सकते थे, नहीं किया। जीसस तो प्रेम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद प्रेम शब्द का प्रयोग करने के कारण ही जीसस जल्दी समझ में आते हैं बजाय महावीर के। महावीर निषेधात्मक शब्द का प्रयोग करते हैं। अहिंसा में वह कहना चाहते हैं 'हिंसा नहीं है।' वह और कुछ भी नहीं कहना चाहते। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा, वह अहिंसा होगी। अहिंसा को लाने का सवाल ही नहीं है। वह उस शब्द में ही छिपा है। अहिंसा को विधायक रूप से लाने का कोई सवाल ही नहीं है, कोई उपाय ही नहीं है।

इसे और एक तरह से देखना जरूरी है। हिंसा और अहिंसा विरोधी नहीं है, प्रकाश और अंधकार विरोधी नहीं हैं। अगर प्रकाश और अंधकार विरोधी हों तो हम अंधकार को लाकर दिए के ऊपर डाल सकते हैं; दिए को बुझना पड़ेगा। नहीं, अंधकार विरोधी नहीं है प्रकाश का, अंधकार अभाव है प्रकाश का। अभाव और विरोध में कुछ फर्क है। विरोधी का अस्तित्व होता है, अभाव का अस्तित्व नहीं होता। अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं होता प्रकाश का अस्तित्व है। अगर अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो सीधा अंधेरे के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। न तो अंधेरा लाया जा सकता है। न निकाला जा सकता है। नहीं तो दुश्मन के घर में हम अंधेरा फेंक आएं। कुछ भी करना हो अंधेरे के साथ तो प्रकाश के साथ करना पड़ेगा। अंधेरा लाना हो तो प्रकाश बुझाना पड़ेगा। अंधेरा हटाना हो तो प्रकाश जलाना पड़ेगा। इसलिए जब यहां अंधेरा मिटता है तो प्रकाश हो जाता है। हम कहते हैं, अंधेरा मिट गया, इससे ऐसा लगता है जैसे अंधेरा था। लेकिन अंधेरा है सिर्फ प्रकाश का अभाव। प्रकाश आ गया—इतना सार्थक है। और प्रकाश आ गया तो अंधेरा कैसे रह सकता है? वह अब नहीं है। न वह कभी था।

महावीर निषेधात्मक अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं। वह कहते हैं कि हिंसा है, हिंसा में हम खड़े हुए हैं। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा उसका नाम अहिंसा है। लेकिन अगर किसी ने अहिंसा को विधायक बनाया तो वह हिंसक रहते हुए

अहिंसा साधने की कोशिश करेगा। हिंसक रहेगा और अहिंसा साधेगा। हिंसक के द्वारा अहिंसा कभी नहीं साधी जा सकती। और अगर साध भी लेगा तो उसकी अहिंसा में हिंसा के सब तत्व मौजूद रहेंगे। वह अहिंसा से भी सताने का काम शुरू कर देगा। इसलिए मैं गांधीजी की अहिंसा को अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधीजी की अहिंसा उस अर्थ में अहिंसा नहीं है जिस अर्थ में महावीर की अहिंसा है। गांधीजी की अहिंसा में भी दूसरे को दबाने, दूसरे को बदलने, दूसरे को भिन्न करने का आग्रह है। उसमें हिंसा है। अगर हम ठीक से कहें तो गांधीजी की अहिंसा अहिंसात्मक हिंसा है। मैं आपकी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो मैं कहता हूं वह ठीक है, आप उसे मानें तो यह हिंसा है। और मैं अपनी छाती पर छुरी लेकर खड़ा हो जाऊं और कहूं कि जो ठीक है वह मानें नहीं तो मैं छुरी मार लूंगा, यह अहिंसा कैसे हो जाएगी?

अनशन कैसे अहिंसा हो सकता है? सत्याग्रह कैसे अहिंसा हो सकता है? उसमें दूसरे पर दबाव डालने जो घाव पूरी तरह उपस्थित है। सिर्फ दबाव डालने का ढंग बदल गया है। एक आदमी कहता है कि मैं भूखा मर जाऊंगा अगर तुम नहीं बदले। अंबेडकर के विरोध में गांधी जी ने अनशन किया। अंबेडकर झुक गया। लेकिन बाद में अंबेडकर ने कहा कि गांधी जी इस भूल में न पड़ें कि मेरा हृदय बदल गया है। मैं सिर्फ यह सोचकर कि मेरे कारण गांधीजी जैसा आदमी न मर जाए, पीछे हट गया हूं। और गांधीजी अपने पूरे जीवन में एक आदमी का भी हृदय परिवर्तन नहीं कर पाए। असल में, हिंसा से हृदय परिवर्तन हो ही नहीं सकता। हिंसा दमन है, दबाव है, जबरदस्ती है। हां, जबरदस्ती दो ढंग की हो सकती है। मैं आपको मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है और मैं अपने को मारने की धमकी दूं, तब भी जबरदस्ती है। और मेरी दृष्टि में दूसरी जबरदस्ती ज्यादा खतरनाक है। पहली जबरदस्ती में आपके पास उपाय भी है सीधा सिर खड़ा करके लड़ने का। दूसरी जबरदस्ती में मैं आपको निःशस्त्र कर रहा हूं, आपका नैतिक बल भी छीन रहा हूं, आपको दबा भी रहा हूं। अहिंसा अगर हिंसा के भीतर रहते साधी जाएगी तो ऊपर अहिंसा हो जाएगी, भीतर हिंसा मौजूद रहेगी। क्योंकि अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें नहीं हैं। गांधी जी के खयाल में अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें हैं। अहिंसा को साधो तो हिंसा खत्म हो जाएगी। लेकिन कौन साधेगा अहिंसा को? हिंसक आदमी साधेगा तो अहिंसा भी साधन बनेगी उसकी हिंसा का। वह फिर अहिंसा से वही उपयोग लेना शुरू कर देगा जो उसने तलवार से लिया होगा।

पूछा जा सकता है कि महावीर ने जिंदगी भर सत्याग्रह क्यों नहीं किया? पूछा जा सकता है कि महावीर ने किसी को बदलने का आग्रह क्यों नहीं किया? सच तो यह है कि सत्याग्रह शब्द ही बेहूदा है। सत्य का कोई आग्रह नहीं हो सकता क्योंकि जहां आग्रह है, वहां सत्य कैसे टिकेगा? आग्रह असत्य का ही होता है। सब सत्याग्रह असत्य आग्रह है। कैसे सत्य का आग्रह हो सकता है? महावीर कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी किया तो हिंसा शुरू हो गई क्योंकि अगर मैंने यह कहा कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है तो मैंने हिंसा करनी शुरू कर दी। मैंने दूसरे व्यक्ति को चोट पहुंचानी शुरू कर दी। इसलिए महावीर सत्य का आग्रह भी नहीं करते। इसी से उनके स्यात की कल्पना है, इसी से उनके अनेकांत की धारणा का जन्म हुआ है।

एक छोटी सी कहानी समझाना चाहूंगा। एक गांव में एक क्रोधी आदमी है जिसके क्रोध ने चरम स्थिति ले ली है। उसने अपने बच्चे को कुएं में धक्का देकर मार डाला। उसने अपनी पत्नी को मकान के भीतर करके आग लगा दी। फिर पछताया है, दुःखी हुआ है। गांव में एक मुनि आए हुए हैं। वह उनके पास गया और उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध को किस प्रकार मिटाऊं। मुझे कुछ रास्ता बताएं कि मैं इस क्रोध से मुक्त हो जाऊं। मुनि ने कहा कि सब त्याग कर दो, संन्यासी हो जाओ, सब छोड़ दो तभी क्रोध जाएगा। मुनि नग्न थे। उस व्यक्ति ने भी कपड़े फेंक दिए। वह वही नग्न खड़ा हो गया। मुनि ने कहाः अब तक मैंने बहुत लोग देखे संन्यास मांगने वाले लेकिन तुम जैसा तेजस्वी कोई भी नहीं दिखा। इतनी तीव्रता से तुमने वस्त्र फेंक दिए। लेकिन मुनि भी न समझ पाए कि जितनी तीव्रता से कुएं में धक्का दे सकता है, वह उतनी ही तीव्रता से वस्त्र भी फेंक सकता है। वह क्रोध का ही रूप है। असल में क्रोध बहुत रूपों में प्रकट होता है। क्रोध संन्यास भी लेता है। इसलिए संन्यासियों में निन्यानवें प्रतिशत क्रोधी इकट्ठे मिल जाते हैं। उनके कारण हैं।

उसने वस्त्र फेंक दिए हैं, वह नग्न हो गया है, वह संन्यासी हो गया है। दूसरे साधक पीछे पड़ गए हैं। उससे साधना में कोई आगे नहीं निकल सकता। क्रोध किसी को भी आगे नहीं निकलने देता। क्रोध ही इसी बात का है कि कोई मुझ से आगे न हो

जाए। वह साधना में भी उतना ही क्रोधी है। लेकिन साधना की खबर फैलने लगी। जब दूसरे छाया में बैठे रहते हैं वह धूप में खड़ा रहता है। जब दूसरे भोजन करते हैं वह उपवास करता है। जब दूसरे शीत से बचते हैं वह शीत झेलता है। उसके महातपस्वी होने की खबर गांव-गांव में फैल गई है। उसके क्रोध ने बहुत अदभुत रूप ले लिया है। कोई नहीं पहचानता, वह खुद भी नहीं पहचानता कि यह क्रोध ही है जो नए-नए रूप ले रहा है।

फिर वह देश की राजधानी में आया। दूर-दूर से लोग उसे देखने आते हैं। देश की राजधानी में उसका एक मित्र है बचपन का। वह बड़ा हैरान है कि वह क्रोधी व्यक्ति संन्यासी कैसे हो गया हालांकि नियम यही है। वह देखने गया उसे। संन्यासी मंच पर बैठा है। वह मित्र सामने बैठ गया। संन्यासी की आंखों से मित्र को लगा है कि वह पहचान तो गया। लेकिन मंच पर कोई भी बैठ जाए फिर वह नीचे मंच वाले को कैसे पहचाने? पहचानना बहुत मुश्किल है। फिर वह मंच कोई भी हो। चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे गुरु की हो। मित्र ने पूछा, आपका नाम? संन्यासी ने कहा शांतिनाथ। फिर परमात्मा की बात करते रहे। मित्र ने संन्यासी से फिर वही प्रश्न किया। संन्यासी का हाथ डंडे पर गया। उसने कहाः बहरे तो नहीं हो, बुद्धिहीन तो नहीं हो? कितनी बार कहूं कि मेरा नाम है शांतिनाथ। मित्र थोड़ी देर चुप रहा। कुछ बौर बात चलती रही आत्मा-परमात्मा की। फिर उसने पूछा कि क्षमा करिए। आपका नाम क्या है? फिर आप सोच सकते हैं क्या हुआ? वह डंडा उस मित्र के सिर पर पड़ा। उसने कहा कि तुझे समझ नहीं पड़ता कि मेरा नाम क्या है? मित्र ने कहा कि अब मैं पूरी तरह समझ गया। यह पता लगाने के लिए तीन बार नाम पूछा है कि आदमी भीतर बदला है या नहीं बदला है।

अहिंसा कांटों पर लेट सकती है, भूख सह सकती है, शीर्षासन कर सकती हैं, आत्म-पीड़ा बन सकती है अगर भीतर हिंसा मौजूद हो। दूसरों को भी दुःख और पीड़ा का उपदेश दे सकती है। हिंसा भीतर होगी तो वह इस तरह के रूप लेगी, खुद को सताएगी, दूसरों को सताएगी और इस तरह के ढंग खोजेगी कि ढंग अहिंसक मालूम होंगे लेकिन भीतर सताने की प्रवृत्ति परिपूर्ण होगी। असल में अगर एक व्यक्ति अपने अनुयायी इकट्ठा करता फिरता हो तो उसके अनुयायी इकट्ठा करने में और हिटलर के लाखों लोगों को गोली मार देने में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। असल में गुरु भी मांग करता है अनुयायी से कि तुम पूरी तरह मिट जाओ, तुम बिलकुल न रहो, तुम्हारा कोई व्यक्ति न बचे। समर्पित हो जाओ पूरे। अनुयायी की मांग करने वाला गुरु भी व्यक्तित्व को मिटाता है सूक्ष्म ढंगों से, पोंछ देता है व्यक्तियों को। फिर सैनिक रह जाते हैं जिनके भीतर आत्मा समाप्त कर दी गई है। हिटलर जैसा आदमी सीधा गोली मार कर शरीर को मार देता है।

पूछना जरूरी है कि शरीर को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होंगे या फिर आत्मा को, व्यक्तित्व को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होते हैं? कहना मुश्किल है। लेकिन दिखाई तो यही पड़ता है कि किसी के शरीर को मारा जा सकता है और हो सकता है कि व्यक्ति बच जाए तब आपने कुछ भी नहीं मारा, और यह भी हो सकता है कि शरीर बच जाए और व्यक्ति भीतर मार डाला जाए तो आपने सब मार डाला। अगर भीतर हिंसा हो, ऊपर अहिंसा हो तो दूसरों को मारने की, दबाने की नई-नई तरकीबें खोजी जाएंगी और तरकीबें खोजी जाती हैं। यह भी हो सकता है कि आदमी सिर्फ इसीलिए एक तरह का चरित्र बनाने में लग जाए कि उस चरित्र के माध्यम से वह किसी को दबा सकता है, गला घोंट सकता है और मैं पवित्र हूं, मैं संत हूं, मैं साधु हूं—इसकी भावना से दूसरे की छाती पर बैठ सकती है, इस अहंकार को दूसरे की फांसी बना सकता है, इसकी पूरी संभावना है।

इसलिए महावीर अहिंसा की विधायक साधना का कोई प्रश्न ही नहीं उठाते। बात बिलकुल दूसरी है उनके हिसाब से। उनके हिसाब से बात यह है कि मैं हिंसक हूं, दूसरे को दुःख देने में मुझे सुख मालूम होता है; दूसरे के सुख से भी दुःख मालूम होता है। यह हमारी स्थिति है, यहां हम खड़े हैं। अब क्या किया जा सकता है? ऐसे आचरण को क्षीण किया जाए जो दूसरे का अहित करता हो, और ऐसे आचरण को प्रस्तावित किया जाए जो दूसरे का मंगल करता हो। एक रास्ता यह है। इस रास्ते को मैं नैतिक कहता हूं और नैतिक व्यक्ति कभी पूरे अर्थों में अहिंसक नहीं हो सकता।

गांधी जी को मैं नैतिक महापुरुष कहता हूं, धार्मिक महापुरुष नहीं। शायद उन जैसा नैतिक व्यक्ति हुआ भी नहीं। लेकिन वह नैतिक ही है। उनकी अहिंसा नैतिक तल पर है, महावीर नैतिक व्यक्ति नहीं है। महावीर धार्मिक व्यक्ति हैं। और धार्मिक व्यक्ति से मेरा क्या प्रयोजन है? धार्मिक व्यक्ति से मेरा प्रयोजन है ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी हिंसा को जाना-पहचाना और

जिसने अपनी हिंसा के साथ कुछ भी नहीं किया, जो अपनी हिंसा के प्रति पूरी तरह ध्यानस्थ हुआ, जाग्रत हुआ, जिसने अपनी हिंसा की कुरूपता को पूरा-पूरा देखा और कुछ भी नहीं किया।

तो मेरी दृष्टि ऐसी है कि अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर की हिंसा को पूरी तरह देखने में समर्थ हो जाए और उसे पूरा पहचान ले, उसके अणु-परमाणुओं को पकड़ ले, उठने-बैठने चलने में, मुद्रा में जो हिंसा है उस सबको पहचान लें, जान ले, साक्षी हो जाए, विवेक से भर जाए तो वह व्यक्ति अचानक पाएगा कि जहां-जहां विवेक का प्रकाश पड़ता है हिंसा पर, वहां-वहां हिंसा बिदा हो जाती है, उसे बिदा नहीं करता होता। वह वहां से क्षीण हो जाती है, समाप्त हो जाती है। न उसे दबाना पड़ता है, न उसे बदलना पड़ता है। सिर्फ चेतना के समक्ष आते वह वैसे ही बिदा हो जाती है जैसे सुबह सूरज निकले और ओस बिदा होने लगे। वह ओसकण बिदा होते हैं सूरज के निकलते ही, उन्हें बिदा करना नहीं होता। उसने ताप का वह झेलने में असमर्थ हैं। चेतना का एक ताप है। महावीर जिसे तप कहते हैं वह चेतना का ताप है। अगर चेतना पूरी की पूरी व्यक्ति के प्रति जागरूक हो जाए तो व्यक्तित्व में जो भी कुरूप है वह रूपांतरित होना शुरू हो जाएगा। उसे रूपांतरित करना नहीं होगा।

कुछ दिन पहले एक घटना घटी। मेरे एक मुसलमान मित्र हैं। हाई कोर्ट के वकील हैं। जिस गांव का मैं हूं वह उसी गांव के हैं। मेरे पास आए कोई साल भर हुआ। उन्होंने कहा कि बहुत वर्षों से सोचता हूं कि आपसे जाकर बात करूं। लेकिन नहीं आया क्योंकि जब भी मैं आप जैसे लोगों के पास जाता हूं तो वे कहते हैं कि यह छोड़ो, वह छोड़ो। न मुझसे जुआ छूटता, न शराब छूटती, न मांस छूटता। बात वहीं अटक जाती है। कुछ भी नहीं छूटता। फिर मैं वहीं का वहीं रह जाता हूं। फिर मैंने उनसे पूछा, 'आज आप कैसे आ गए?' उन्होंने कहा कि किसी के घर भोजन पर गया था और उन्होंने कहा कि आप तो कुछ छोड़ने को कहते नहीं। तो मैं सीधा यही चला आया हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं छोड़ने को क्यों कहूंगा? छोड़ने से मुझे कोई संबंध नहीं है। आप छोड़ो मत, जागो। आप कुछ देखने की कोशिश करो भीतर, कुछ निरीक्षण करो, कुछ होश से भरो, कुछ मूर्च्छा को तोड़ो। उन्होंने कहाः क्या किया जा सकता है? क्या मुझे जुआ नहीं छोड़ना पड़ेगा? शराब नहीं छोड़नी पड़ेगी?

मैंने उनसे कहा कि आप जिस चेतना की स्थिति में हैं उसमें शराब अनिवार्य है। अगर एक शराब छोड़ेंगे दूसरी शराब पकड़ेंगे, दूसरी शराब छोड़ेंगे तीसरी शराब पकड़ेंगे। और इतनी किस्म-किस्म की शराबें हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। अधार्मिक शराबें हैं, धार्मिक शराबें भी हैं। एक आदमी भजन कीर्तन कर रहा है दो घंटे से और मूर्छित हो गया है। वह उतना ही रस ले रहा है भजन कीर्तन में, वही रस मूर्च्छा का जो एक शराबी ले रहा है। मंदिर में भी शराबी इकट्ठे होते हैं। वहां भी मूर्छित होने की तरकीबें खोजते हैं। एक आदमी नाच रहा है, ढोल-मंजीरा पीट रहा है। उस नाच में, ढोल मंजीरा पीटने में मूर्छित हो गया। अब वह शराब का ही मजा ले रहा है। बहुत किस्म की शराबें हैं।

मैंने उनसे कहा लेकिन चेतना अगर शराब पीने वाली है तो आप शराब बदल सकते हैं, शराब नहीं छूट सकती। चेतना बदले तो कुछ हो सकता है। मैंने उन्हें महावीर का एक छोटा सा सूत्र कहा। महावीर कहते हैंः उठो तो विवेक से, चलो तो विवेक से, बैठो तो विवेक से, सोओ तो विवेक से। विवेक का मतलब है कि चलते समय पूरी चेतना हो कि मैं चल रहा हूं, बैठते समय पूरी चेतना हो कि मैं बैठ रहा हूं, उठते समय पूरी चेतना हो कि मैं उठ रहा हूं। बेहोशी में कोई कृत्य न हो पाए, सोए-सोए कोई कृत्य न हो पाए। होशपूर्वक जीना हो तो धीरे-धीरे भीतर के समस्त चित्त के प्रति जागना है और जागते ही रूपांतरण शुरू हो जाता है। जागकर रूपांतरण करना नहीं पड़ता है। बुद्ध जिसे सम्यक स्मृति कहते हैं महावीर उसे विवेक कहते हैं, जीसस ने उसे अवेयरनेस कहा है, गुरजिएफ ने उसे सैल्फ रिमैम्ब्रिंग कहा है। कुछ भी नाम दिया जा सकता है। लेकिन एक ही बात है हम सोए-सोए जागते हैं।

मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। एक मित्र से बात कर रहे हैं। एक मक्खी कंधे पर आकर बैठ गई है। बुद्ध ने बात करते हुए मक्खी उड़ा दी है। बात जारी रखी है और मक्खी उड़ा दी है। फिर रुक गए। मक्खी तो उड़ गई है, फिर रुक गए हैं। फिर दुबारा हाथ ले गए वहां जहां मक्खी थी, अब वह वहां नहीं है। साथी मित्र ने पूछाः आप क्या कर रहे हैं? बुद्ध

ने कहा कि मैं तुमसे बातचीत करने में लीन था और मैंने मक्खी को बिलकुल मूर्च्छित भाव से उड़ा दिया जैसे कोई बेहोश उड़ाता हो। अब मैं होशपूर्वक उड़ा रहा हूं जैसा कि मुझे उड़ाना चाहिए था।

तो मैंने अपने मित्र को कहा कि जीवन की क्रियाओं में होशपूर्वक जीने का प्रयोग करो। छः महीने बाद वह मेरे पाए आए और मुझे कहा कि आपने मुझे धोखा दिया है। शराब पीनी मुश्किल होती चली जाती है क्योंकि दो बातें एक साथ चलनी असंभव हैं। अगर मुझे होशपूर्वक जीना है तो मैं शराब नहीं पी सकता हूं। और अगर होशपूर्वक नहीं जीना है तो मैं शराब पी सकता हूं। लेकिन अब होशपूर्वक जीने में जो आनंद की अनुभूति शुरू हुई है वह शराब पीने से कभी नहीं मिली।

एक और बात उन्होंने मुझे कही कि एक अदभुत अनुभव मुझे हुआ है कि जब मैं दुःखी था तो शराब दुख को भुला देती थी। इधर अभी महीनों निरंतर जागने की कोशिश से सुख की एक धार भीतर बहनी शुरू हुई है, एक झरना भीतर फूटना शुरू हुआ है। शराब पीता हूं तो मैं भूल जाता हूं। शराब सिर्फ भुलाती है सुखी आदमी को सुख भुला देती है, दुःखी आदमी को दुःख भुला देती है और दुखी आदमी शराब खोजे, समझ में आता है। सुखी आदमी शराब कैसे खोज सकता है? तो उन्होंने कहा कि मुश्किल हो गया। मैंने कहाः मुश्किल हो जाए बात अलग, लेकिन मुझसे उसकी बात मत करना। आप जागने का, ध्यान का प्रयोग जारी रखें?

मेरी दृष्टि में महावीर ने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया। महावीर ने तो ध्यान का एक उपदेश दिया। उस ध्यान से जो भी गुजरा, वह अहिंसक हो गया। उस ध्यान से गुजरने वाले को अहिंसक हो जाना पड़ा। उस ध्यान से जो गुजरेगा वह अहिंसक हो ही जाएगा। अहिंसा की अलग से शिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अब महावीर के पीछे चलने वाले लोग हैं। वे 'अहिंसा परमो धर्मः' की तख्तियां लगाए हुए बैठे हैं। वे बैठे रहेंगे तख्तियां लगाए हुए और अहिंसा चलती रहेगी। और वे अपने बच्चों को अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। वे सारी दुनिया में शोरगुल मचा रहे हैं कि अहिंसक हो जाना चाहिए सब को। और उन्हें शायद मूल सूत्र का पता ही नहीं है कि अहिंसक कोई होगा कैसे? भीतर चित्त जागे तो जागे चित्त से हिंसा विसर्जित होती है। जागे हुए चित्त में हिंसा नहीं रह जाती। जागा हुआ चित्त हिंसा से मुक्त हो जाता है; हिंसा से मुक्त होना नहीं पड़ता। और तब जो शेष रह जाता है, वह अहिंसा है।

अहिंसा शब्द नकारात्मक है। हिंसा चली जाती है, जो शेष रह जाती है, वह अहिंसा है। ब्रह्मचर्य, सत्य विधायक शब्द हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य नकारात्मक शब्द हैं। यह सोचने जैसा है। असल में परिग्रह की वृत्ति बिदा हो जाती है तो जो शेष रह जाता है वह अपरिग्रह है। अपरिग्रह को सीधा नहीं साधा जा सकता है। और कोई अगर अपरिग्रह को सीधा साधेगा तो वह परिग्रही हो जाएगा, अपरिग्रही नहीं। अगर कोई धन छोड़ेगा तो जितनी पकड़ उसकी धन के साथ थी, उतनी अब धन छोड़ा इस बात के साथ शुरू हो जाएगी।

मैं एक संन्यासी के पास ठहरा था। वह दिन में दो-तीन बार मुझसे कहे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। चलते वक्त सांझ को मैंने कहाः लात आपने कब मारी? उन्होंने कहा कोई तीस साल हुए। तो मैंने कहा कि जाते वक्त एक बात कह जाऊं। वह लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो तीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है? लात लग ही नहीं पाई, बिलकुल चूक गई। लाखों रुपए मेरे पास थे, यह भी अहंकार था। लाखों रुपए मैंने छोड़े, यह भी अहंकार है। और पुराने अहंकार से यह ज्यादा सूक्ष्म, ज्यादा जटिल और ज्यादा खतरनाक है। अगर कोई परिग्रह छोड़ेगा तो त्याग को पकड़ेगा।

मैं महावीर को त्यागी नहीं कहता हूं। महावीर ने कोई परिग्रह नहीं छोड़ा, इसलिए त्यागी का कोई सवाल नहीं है। महावीर का परिग्रह बिदा हो गया है। जो शेष रह गया है वह अपरिग्रह है। कोई चोरी छोड़ेगा तो सिर्फ छोड़ा हुआ चोर होगा। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। भीतर चोरी जारी रहेगी। हाथ-पांव बांध लेगा, रोक लेगा अपने को छाती पर पत्थर रखकर कि चोरी नहीं करनी लेकिन भीतर चोर होगा। कोई चोरी करने से थोड़ी ही चोर होता है। लेकिन अगर कोई जागेगा और चोरी बिदा हो जाएगी तो अचौर्य शेष रह जाएगा। अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह नकारात्मक है। क्योंकि कुछ बिदा होगा तो कुछ शेष रह जाएगा।

और यह बड़े मजे की बात है कि अगर हिंसा बिदा हो जाए, परिग्रह बिदा हो जाए, चोरी बिदा हो जाए—अगर यह तीनों बिदा हो जाएं तो अहिंसा, अचौर्य और अपरिग्रह की जो चित्तदशा होगी। उसमें सत्य का उदय होगा। इन तीन के बिदा होने

पर सत्य का अनुभव होगा। ये द्वार बन जाएंगे और सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य को कोई खोज नहीं सकता। हमें पता ही नहीं कि वह कहां है। हम उस स्थिति में आ जाएं जहां द्वार खुल जो तो सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य होगा इन तीन के द्वार से उपलब्ध अनुभव और ब्रह्मचर्य होगा उसकी अभिव्यक्ति। वह जो सत्य मिल गया उस जीवन के सब हिस्सों में प्रकट होने लगेगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ये तीन बनेंगे द्वार और तीन में अहिंसा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जिस आदमी की हिंसा बिदा हो गई है, वह चोरी कैसे करेगा? क्योंकि चोरी करने में हिंसा है और जिस आदमी की हिंसा बिदा हो गई है, वह कैसे संग्रह करेगा, क्योंकि सब संग्रह के भीतर चोरी है। इसलिए अगर हम बाकी दो को बिदा भी कर दें तो तीन बातें रह जाती हैः अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य। अहिंसा के दो हिस्से हैं—अचौर्य, अपरिग्रह।

अहिंसक चित्त में सत्य का अनुभव होगा और ब्रह्मचर्य उसका आचरण होगा। लेकिन यह अहिंसा समाधि से, ध्यान से उपलब्ध होती है। आप कह सकते हैं कि बहुत से ध्यानी लोग हुए हैं जो अहिंसक नहीं है। जैसे, रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी मांसाहारी है। रामकृष्ण मछली खाते हैं और विवेकानंद भी। तो विचार होता है कि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी अगर ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होकर मछलियों से मुक्त नहीं होता है तो मामला क्या है? मेरी दृष्टि में महावीर का जो ध्यान है, उस ध्यान से गुजरने पर ही अहिंसा की उपलब्धि हो सकती है। वह जागने का ध्यान है। और रामकृष्ण का जो ध्यान है, वह जागने का नहीं, सो जाने का, मूर्छित हो जाने का ध्यान है। रामकृष्ण का ध्यान ठीक से समझा जाए तो वह सिर्फ मूर्च्छा है। इसलिए रामकृष्ण तीन-तीन, चार-चार दिन बेहोश पड़े रहते हैं। मुख से फेन गिर रहा है, आंखें बंद हैं, हाथ पैर अकड़ गए हैं। मेरी दृष्टि में उनकी चेतना भी खो गई है। वह उसी हालत में हैं जिस हालत में कोई हिस्टीरिया में हो। और इसलिए उनके व्यक्तित्व में कोई अंतर नहीं होगा। हिंसा जारी रहेगी। महावीर और बुद्ध की इस जगत को जो सबसे बड़ी देन है वह इस भांति के ध्यान के प्रयोग है। जिस प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा होती है और जिस ध्यान के प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा न होती हो, उस ध्यान के प्रयोग का अंतिम परिणाम ब्रह्मचर्य भी नहीं हो सकता है क्योंकि काम वासना भी बहुत गहरे में हिंसा का ही एक रूप है।

जिसके भीतर गाली उठती है वह गाली देता है, क्रोध आता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है, सहज है, जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर में कोई फर्क नहीं है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नहीं होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखंडी व्यक्ति है जो भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। पाखंडी व्यक्ति बाहर ज्ञानी जैसा होता है, भीतर अज्ञानी जैसा होता है। पाखंडी का मतलब है भीतर अज्ञानी जैसा। उसके भीतर भी गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है। और बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, 'अहिंसा परमो धर्मः' की तख्ती लगाकर बैठता है, सच्चरित्रवान दिखाई पड़ता है, सब नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर उसका कोई व्यक्तित्व नहीं।

कोई अहिंसा का अनुयायी नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। अहिंसा को आचरण से साधने कोई जाएगा तो अभिनय, पाखंड में पड़ जाएगा। सामने के द्वार से अहिंसक होगा, पीछे के द्वार से हिंसा जारी रहेगी। मिथ्या अहिंसा और भी खतरनाक है क्योंकि वह अहिंसा मालूम पड़ती है और अहिंसा नहीं है। फिर उपाय क्या है? फिर उपाय सिर्फ एक है क्योंकि अहिंसा है एक नकारात्मक स्थिति—हिंसा जहां नहीं है ऐसी स्थिति। और हिंसा में हम खड़े हैं। हम क्या करें? दो ही उपाय हैं। या तो हम हिंसा से लड़ें या अहिंसक होने की कोशिश करें। कोशिश से साधी गई अहिंसा कभी भी अहिंसा नहीं हो सकती। क्योंकि कोशिश करने वाला हिंसक है। और हिंसक ने जो कोशिश की है उसमें हिंसा मौजूद है। और हिंसक ने जो भी कोशिश की है, उसमें हिंसा प्रविष्ट हो जाएगी। फिर क्या करें?

एक ही उपाय हैः अपनी हिंसा के साक्षी बन जाने का। कुछ भी न करें, करने की बात ही छोड़ दें। मैं जैसा हूं—हिंसक, क्रोधी, अत्याचारी, अनाचारी, दुराचारी—जैसा भी मैं हूं, मैं उसके प्रति जागा हुआ रह जाऊं और इस स्थिति में रहने की कोशिश करूं कि मैं जानूं जो भी हूं, बदलने की फिक्र ही न करूं, सिर्फ जानूं। बदलने की फिक्र में जान भी नहीं पाते हैं और अगर कोई जान ले तो बदल पाता है। ज्ञान ही रूपांतरण है, ज्ञान ही क्रांति है। अपनी हिंसा को जान लेना अहिंसा को उपलब्ध हो जाना है।

इससे यह मतलब मत समझ लेना कि आपको अहिंसा का जो अनुभव होगा, वह नकारात्मक होगा। एक अर्थ में अहिंसा की स्थिति नकारात्मक है। हिंसा चली जाएगी, जो शेष रह जाएगा वह अहिंसा है। इस अर्थ में वह नकारात्मक है। लेकिन जब अहिंसा प्रकट होगी और सारे जीवन से उसकी किरणें फूट पड़ेंगी, उससे ज्यादा कोई विधायक अनुभूति नहीं है। इसलिए महावीर ने परमात्मा की बात ही बंद कर दी है। क्योंकि अहिंसा का अनुभव हो जाए तो परमात्मा का अनुभव हो गया। कोई जरूरत न समझी उस बात की। अहिंसा का पूर्ण अनुभव परमात्मा का अनुभव है।

हिंसा बिदा हो सकती है, बिदा की नहीं जा सकती। दिया जल जाए तो अंधेरा बिदा हो जाता है। ध्यान जग जाए तो हिंसा बिदा हो जाती है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मैं कोई पंडित नहीं हूं, न होना चाहता हूं। भगवान की कृपा से उस झंझट में, भूल में पड़ने का कोई मौका नहीं आया। सौभाग्य है कि आप सब विद्वज्जनों ने शांति और प्रेम से भरी बातें सुनीं। उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रश्नः आपने जो अहिंसा के संबंध में महात्मा गांधी और महावीर की दृष्टि को प्रस्तुत किया है, आप स्वयं हिंसक है या अहिंसक—अपनी सम्मति कहें।

उत्तरः मेरे कहने का क्या फर्क पड़ेगा। मैं तो यही कहूंगा कि मैं हिंसक हूं। क्योंकि यह कहना भी कि मैं अहिंसक हूं हिंसा हो जाएगी। तो यही समझें कि मैं हिंसक हूं। और मेरे कहने से क्या पता चलेगा कि मैं क्या हूं, क्या नहीं हूं। इसे बातचीत के बाहर छोड़ा जा सकता है सहज ही और जितना बातचीत के बाहर छोड़ दें उतना आसान होगा। मुझे नहीं समझना है आपको, अहिंसा को समझना है। और अहिंसा को समझना हो तो 'मैं' को बिलकुल ही बाहर छोड़ देना चाहिए। न तो 'मैं' समझा जा सकता है, न समझाया जा सकेगा। क्योंकि 'मैं' तो बड़ी हिंसा हो जाएगी।

अभी-अभी दोपहर में मैं कह रहा थाः एक व्यक्ति ने जाकर पूछा एक झेन फकीर से कि क्या आपको ईश्वर की उपलब्धि हो गई है। तो उस फकीर ने कहा कि अगर मैं कहूं कि उपलब्धि हो गई है तो जो जानते हैं वे मुझ पर हंसेंगे क्योंकि जिसे कभी खोया ही नहीं था उसकी उपलब्धि कैसी। अगर मैं कहूं कि मुझे उपलब्धि नहीं हुई तो तुम बिना कुछ जाने-समझे लौट जाओगे। और तक भी नुकसान होगा।

इससे क्या फर्क पड़ता है कि मुझे उपलब्धि हुई है या नहीं हुई है। यह निपट मेरा मामला है। इससे क्या लेना-देना है। लेकिन अहिंसा के संबंध में मैं जो कुछ कह रहा हूं उस संबंध में कुछ पूछेंगे तो अच्छा होगा अगर मेरे संबंध में कुछ पूछना हो तो मैं दुबारा आऊं तब फिर मैं अपने संबंध में बोलूं तो ठीक होगा।

प्रश्नः क्या महावीर से पहले इतने ऋषि-महर्षि हुए उन्होंने अहिंसा को नहीं समझा?

उत्तरः मुझे पता नहीं ऋषि-महर्षि कहीं मिल जाएं तो उनसे पूछना चाहिए। समझा होगा, बहुत लोगों ने समझा होगा क्योंकि महावीर कोई शुरुआत नहीं है जगत की और न महावीर कोई अंत हैं। बहुत लोग उस दिशा में गए होंगे। असल में जो भी कभी गया होगा वह अहिंसा से गया होगा। लेकिन शायद हमारे पास ऐतिहासिक रूप से जो निकटतम आदमी है, वह महावीर है जिनके बाबत ज्यादा से ज्यादा हमें पता है।

महावीर के पहले भी अहिंसा को अनुभव करने वाले लोग रहे होंगे। लेकिन महावीर सबसे बड़ा स्पष्ट व्याख्याता हैं। फिर यह भी होता है कई बार कि कोई आदमी जान ले तो जरूरी नहीं है कि बता सके। मैं जाऊं और चांदनी रात देखूं, तारे देखूं, और लौट कर आऊं और आप मुझसे कहें कि एक चित्र बनाकर बता दें जो सौंदर्य आपने देखा है। हो सकता है कि मैं न बना सकूं क्योंकि रात की चांदनी देखना एक बात है और चित्र बनाने की कला अलग बात है। बहुत लोगों ने अहिंसा देखी हो लेकिन महावीर ने जिस ढंग से बताई है, शायद किसी शिक्षक ने नहीं बताई है।

प्रश्नः आपने बताया कि जब भी अहिंसा को शब्द देते हैं वह वाद या सिद्धांत का रूप धारण कर लेती हैः वह अहिंसा हिंसा के रूप में परिणत हो जाती है। और आपने कहा कि विवेक द्वारा ही हम अपनी अनुभूति को जगा सकते हैं और कार्य का संपादन कर सकते हैं। तो मेरा प्रश्न यह है कि विश्व विवेक का स्फुरण कैसे हो और जब आप बताएंगे कि विवेक के स्फुरण करने में यह पद्धति होगी, तो वह पद्धति शास्त्र का रूप धारण कर लेगी।

उत्तरः ठीक कहते हैं, बिलकुल ठीक कहते हैं। आपने दो-तीन बातें पूछी जो कि महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि मैंने कहा कि अहिंसा को संगठित नहीं किया जा सकता। असल में सिर्फ घृणा के लिए संगठित होने को जरूरत है। शत्रुता के लिए संगठित होने की जरूरत है। प्रेम के लिए संगठित होने की जरूरत ही नहीं है। प्रेम अकेले ही काफी है। घृणा अकेले काफी नहीं है, इसलिए घृणा संगत बनाती है। दुनिया के सब संगठन घृणा के ही संगठन हैं, हिंसा के ही संगठन है। और इसलिए जब घृणा का मौका आ जाता है तो लोग संगठित हो जाते हैं। जैसे भारत पर चीन का हमला हुआ तो लोग ज्यादा संगठित हो जाएंगे। हमला चला जाएगा संगठन कम हो जाएगा, क्योंकि हमला घृणा को पैदा करेगा, हिंसा को पैदा करेगा। असल में जो व्यक्ति प्रेम को उपलब्ध है वह अकेला ही काफी है। वह दूसरे को इकट्ठा करने नहीं जाता। दूसरे को इकट्ठा करने की कोई जरूरत ही नहीं। दूसरे को हम इकट्ठा तब करते हैं जब कुछ ऐसा करना हो जिसे अकेला करना कठिन हो जाए। प्रेम अकेले ही किया जा सकता है, अकेले ही बांटा जा सकता है। लेकिन संगठन की जरूरत है क्योंकि हमें बड़ी हिंसाएं करनी हैं, बड़ी हत्याएं करनी हैं राष्ट्रों के नाम पर, संप्रदायों के नाम पर, धर्मों के नाम पर। तो जब भी संगठन होगा, उसके केंद्र में हिंसा होगी, घृणा होगी चाहे वह संगठन किसी का भी हो। हो सकता है कि अहिंसकों का हो हिंसकों के खिलाफ। तो भी वह हिंसा ही होगी। संगठन मात्र हिंसात्मक होंगे। अहिंसात्मक संगठन का कोई अर्थ नहीं होता। अहिंसात्मक व्यक्ति अकेला ही काफी है। दस अहिंसात्मक व्यक्ति भी मिलकर बैठ सकते हैं लेकिन वे एक-एक ही होंगे। संगठन का कोई अर्थ नहीं है, यह मैंने कहा।

दूसरी बात आपने बहुत बढ़िया पूछी, वह यह कि स्फुरण कैसे हो विवेक का और साथ में यह भी पूछा कि मैं बताऊंगा तो फिर वह शास्त्र हो जाएगा। बिलकुल ठीक है। अगर मेरे बताने के कारण आप उस पर चलेंगे तो आप शास्त्र पर चले। लेकिन अपने विवेक के कारण अगर आप उस पर चले तो शास्त्र यहीं पड़ा रह गया। जैसे मुझसे कोई पूछे कि तैरना कैसे? क्या उपाय है? तो मैं कहूंगा कि तैरने का कोई उपाय नहीं होता सिवाय तैरने के। लेकिन एक आदमी अगर कहे कि मैं नदी में तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख जाऊंगा क्योंकि बिना तैरना सीखे कैसे उतरूं तो वह तर्कयुक्त बात कह रहा है। बिना तैरना सीखे उसे नदी में उतरना खतरे से भरा है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नहीं तब तक तैर भी नहीं सकोगे। तैरना भी सीखना हो तो पानी में उतरना होगा। लेकिन पहली बार पानी में उतरना तड़फड़ाना ही होगा, तैरना नहीं हो सकता। असल में तैरना क्या है? तड़फड़ाने का व्यवस्थित रूप है। पहले तड़फड़ाएंगे, फिर तड़फड़ाने में तकलीफ होगी तो व्यवस्थित हो जाएंगे। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि तैरना आ गया, तड़फड़ाना चला गया। तैरना तड़फड़ाने का ही व्यवस्थित रूप है। आदमी पहले दिन पानी में पटकने से ही तैरता है। फिर बाद में जो विकास होता है, वह उसके अपने तैरने के अनुभव से होता है,

तो मैं आपको क्या कहूं कि विवेक कैसे जगे? विवेक को जगाना हो तो विवेक करना होगा; तैरना सीखना है तो तैरना शुरू करना होगा। और कोई उपाय नहीं है। रास्ते पर चलते, खाना खाते, बात करते, सुनते, उठते, बैठते विवेकपूर्ण होना होगा। लेकिन ठीक आप पूछते हैं कि जो मैं कह रहा हूं और मेरी बात जब मैंने समझाई तो शास्त्र हो गई। मगर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बात समझाने से शास्त्र नहीं होती, बात आपको समझने से शास्त्र होती है। अगर मैंने कहा कि बात किसी तीथ□कर ने कही है, किसी सर्वज्ञ ने कही है, और आपने कहा कि ऐसे व्यक्ति ने कही है जो जानता है और भूल नहीं करता फिर वह शास्त्र बन जाती है, नहीं तो किताब ही रह जाती है।

किताब और शास्त्र में फर्क है। जो किताब पागल हो जाता है वह शास्त्र है। जो कि बात दावा करने लगती है वह शास्त्र बन जाती है। मैं किताबों का दुश्मन नहीं हूं, शास्त्र का दुश्मन हूं। किताबें तो रहनी चाहिए, बड़ी अदभुत हैं, बड़ी जरूरी है। किताबों के बिना नुकसान हो जाएगा। लेकिन शास्त्र बड़े खतरनाक हैं। जब कोई किताब दावा करती है कि मैं परम सत्य हूं और जो मेरे रास्ते से चलेगा वही पहुंचेगा, और जो मैंने कहा है, ऐसा ही करेगा तो पहुंचेगा अन्यथा नरक है, अन्यथा नरक की अग्नि में सड़ना पड़ेगा तब किताब शास्त्र हो गई। और जब कोई इसे इस तरह मान लेता है तो वह बाधक हो जाती है।

मैं जो कह रहा हूं वह कोई शास्त्र नहीं है। मैं कोई प्रमाण नहीं हूं। कोई आप्त वचन नहीं है मेरा। मैं कोई तीथ□कर नहीं हूं। मैं कोई सर्वज्ञ नहीं हूं मैं एक अति सामान्य व्यक्ति हूं। जो मुझे दिखता है वह आपसे निवेदन कर रहा हूं। यह सिर्फ संवाद है।

आपने सुन लिया, बड़ी कृपा है। मानने का कोई आग्रह ही नहीं है। लेकिन सुनते वक्त अगर आपने विवेक से सुना, अगर जागे हुए सुना और कोई चीज उस जागरण में आपको दिखाई पड़ गई तो वह चीज आपकी है, वह मेरी नहीं है। कल मैं उस पर दावा नहीं कर सकता कि वह मेरी है। अगर आपने होशपूर्वक सुना, विचारपूर्वक सुना, समझा, सोचा, खोजा और कोई बात आपको मिल गई तो वह आपकी है।

इसलिए सत्य कभी किसी को दिया नहीं जा सकता। मैं आपको कोई सत्य नहीं दे सकता। लेकिन मैं जो कह रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं, उस बात करने के वक्त आप इतने जागे हुए हो सकते हैं, विवेक से भरे हुए हो सकते हैं कि कोई सत्य आपको दिखाई पड़ जाए। कई बार ऐसा भी होता है कि अज्ञानियों से भी सत्य मिल जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि ज्ञानी भी सत्य नहीं दे पाता।

मैंने सुना है कि बंगाल में एक फकीर हुआ, राजा बाबू उनका नाम था। वह हाईकोर्ट के मजिस्ट्रेट थे, जस्टिस थे, रिटायर्ड हुए थे, साठ साल के थे। सुबह के वक्त घूमने निकले हैं एक लकड़ी लेकर, रोज की आदत के अनुसार। एक मकान के सामने से निकले हैं। दरवाजा बंद है। घर के भीतर कोई मां, कोई भाभी, किसी बेटे को, किसी देवर को उठा रही है। उसे पता भी नहीं कि कोई बाहर राजा बाबू नाम का बूढ़ा आदमी जा रहा है। उसने भीतर अपने बेटे को कहाः राजा बाबू, उठो, अब बहुत देर हो गई, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? और बाहर राजा बाबू चले जा रहे हैं, उन्हें एकदम सुनाई पड़ाः राजा बाबू उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया है, कब तक सोए रहोगे? वह छड़ी उन्होंने वहीं फेंक दी, दरवाजे पर नमस्कार किया उस स्त्री के लिए जिसको कि पता भी नहीं होगा क्योंकि वह तो घर के भीतर थी। घर वापिस लौट आए। आकर कहा कि अब मैं जा रहा हूं। तो घर के लोगों ने कहा कि कहां जाते हो। तो उन्होंने कहाः राजा बाबू, उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? उन लोगों ने कहाः पागल हो गए हैं। क्या बातें कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा कि आज कुछ सुनाई पड़ गया, कुछ मिल गया। अब मैं जाता हूं।

मैंने यह भी सुना है कि एक फकीर अपने गुरु के निवास पर बीस वर्षों तक रहा। उसे कुछ भी न मिला। सब समझाना व्यर्थ हो गया। फिर गुरु ने कहा कि अब तो समझना भी छोड़ क्योंकि समझने से बीस साल में नहीं मिला तो अब तू समझना छोड़ दे। अब तेरा मन हो तो तू बैठ जा, न मन हो तो उठ जा। समझना हो तो समझ, न समझना हो तो न समझ, सोना हो तो सो जा। जो तुझे करना हो कर। अब तू समझना छोड़ दे। क्योंकि समझना भी एक दिक्कत दे रहा है, क्योंकि समझना भी तो एक तनाव ले आता है। किसी का नाम भूल गया हो, खोजते हैं, खो जाता है फिर छोड़ देते हैं फिर चाय पीने लगते हैं, गड्ढा खोदने लगते हैं बगीचे में और अचानक ही वह नाम याद आ जाता है। समझना भी तनाव पैदा कर देता है।

उसने कहाः ठीक है, अब मैं समझना भी छोड़ता हूं। उसी दिन वह दरवाजे के बाहर निकला, बाहर पीपल का वृक्ष है। सूखे पत्ते गिर रहे हैं। पतझड़ है। वह खड़ा हो गया, पत्ते गिर रहे हैं सूखे वह वापस लौट कर पहुंचा। गुरु के पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं समझ गया। गुरु ने कहा कि मैं तो थक गया समझा-समझा कर। तू अब तक नहीं समझा। उसने कहाः आज मैं समझने का खयाल छोड़कर बाहर द्वार पर जाकर खड़ा हुआ। पीपल के पत्ते गिर रहे हैं। पत्ते सूख गए हैं और गिर रहे हैं। मुझे वह सब दिख गया जो आपने बहुत बार समझाया। मुझे मृत्यु दिख गई और मैं मर गया उन पत्तों के साथ। अब मैं वह आदमी नहीं हूं जो रोज आया करता था। अब मैं एक सूखा पत्ता हूं। गुरु ने कहा कि अब तुझे मेरे पास आने की जरूरत भी नहीं है। अब बात खत्म हो गई है। पीपल ही तेरा गुरु है, उसी को नमस्कार कर और बिदा हो जा। अब पीपल को पता भी नहीं होगा।

कैसे पता होगा? मैं समझाऊं तो उससे आप नहीं समझ जाएंगे। आप खुद समझेंगे तो ही समझेंगे। और वह समझ सदा आपकी अपनी होगी, वह मेरी नहीं हो सकती। हां, मैं एक मौका, एक अवसर पैदा कर सकता हूं समझाने की कोशिश का। हो सकता है कोई उस वक्त जागा हुआ हो, उसे सुनाई पड़ जाए कि राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहेंगे। लेकिन यह शास्त्र नहीं बनता। महावीर की वाणी शास्त्र नहीं बनती अगर हम महावीर को सर्वज्ञ और तीथ□कर न बनाते। बुद्ध की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम बुद्ध को भगवान न बनाते। कृष्ण की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम उन्हें भगवान न बनाते। लेकिन हम

बिना भगवान बनाए रुक नहीं सकते क्योंकि बिना भगवान बनाए हमें समझना पड़ेगा, भगवान बनाने से झंझट उनकी तरफ हो जाती है। हमें समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

हम शास्त्र को पकड़ लेते हैं, और पक्का कर लेना चाहते हैं कि महावीर आप्त हैं, उपलब्ध है, उनको ज्ञान मिल गया है, वह सर्वज्ञ हैं। अगर संदिग्ध हों तो हम फिर किसी और को खोजें। जीसस भगवान के बेटे हैं, मुहम्मद पैगंबर हैं, इस तरह हम पक्का विश्वास जुटा लेना चाहते हैं ताकि झंझट मिट जाए। फिर हम पकड़ लें। वह हमारा विवेक न जगाना पड़े।

विवेक से बचने के लिए हम शास्त्र को पकड़ते हैं। विवेक को जगाना हो तो पीपल के पत्ते भी जगा सकते हैं, जगत की कोई घटना भी जगा सकती है, किताब भी जगा सकती है, किसी आदमी का बोलना भी जगा सकता है, किसी आदमी का चुप होना भी जगा सकता है। समझना हो तो चुप भी समझ में आती है, न समझना हो तो बोला हुआ सत्य भी समझ में नहीं आता।

मैं कोई पद्धति की बात नहीं कर रहा हूं। विवेक कोई पद्धति नहीं हो सकती। विवेक का स्मरण आ सकता है। फिर आपको कूदना पड़ेगा तैरना पड़ेगा तड़फड़ाना पड़ेगा। धीरे-धीरे आ जाएगा विवेक। जिस दिन आ जाएगा उस दिन आपको लगेगा कि किसी का दिया हुआ नहीं आया। किसी गुरु का दिया हुआ नहीं, किसी शास्त्र का दिया हुआ नहीं उस दिन आपको लगेगा कि मेरे ही भीतर सोया था जग गया है, मेरे भीतर सोया था जग गया ही था आ गया है, जो उपलब्ध था वही पा लिया है, जिसे कभी नहीं खोया था वही मिल गया है।

प्रश्नः पहला प्रश्न यह है कि समाज का अहिंसा से क्या संबंध है। दूसरा प्रश्न यह है कि महावीर ने अहिंसा या सत्य की दो ढाई हजार वर्ष पहले बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है। तीसरा प्रश्न यह है कि जो आप कहते हैं कि नैतिक अहिंसा अलग है और धार्मिक अहिंसा अलग है, अगर आप दोनों में से अहिंसा को हटा दें तो इसको मतलब यह है कि जब आप धर्म की बात पर आ जाते हैं तो वह नष्ट हो जाती है।

उत्तरः जो प्रश्न आपने पूछे हैं उनका समाधान मैं करूंगा तो नहीं होगा। समाधान आप खोजेंगे तो मिल जाएगा। मैं कोशिश कर सकता हूं। पहली बात आप पूछते हैं कि आज के समाज के साथ अहिंसा का क्या संबंध है। समाज का अहिंसा से कभी संबंध नहीं था। समाज तो हिंसक है और हिंसा पर ही खड़ा है। अहिंसा का संबंध व्यक्तियों से है। अभी वह दिन दूर है जबकि सभी व्यक्ति अहिंसक हो जाएंगे और जो समाज होगा वह अहिंसक होगा। समाज का संबंध अभी अहिंसा से नहीं है, न अब तक कभी था। आगे संभावना है। कभी होगा, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन अगर व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध होते चले जाएं तो समाज उनसे निर्मित होगा, वह धीरे-धीरे अहिंसक होता चला जाएगा। अभी तक अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं, अहिंसक समाज पैदा नहीं हुआ है। महावीर अहिंसक होंगे, जैन थोड़े ही अहिंसक हैं? बुद्ध अहिंसक होंगे, बौद्ध थोड़े ही अहिंसक हैं? अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं अब तक, अहिंसक समाज नहीं पैदा हुआ। व्यक्ति बढ़ते चले जाएंगे और किसी दिन अहिंसक व्यक्तियों का पलड़ा भारी हो जाएगा। अहिंसक व्यक्तियों से एक अहिंसक समाज की संभावना भी प्रकट होगी। अभी कोई आशा नहीं है जल्दी।

दूसरी बात आप पूछते हैं कि ढाई हजार साल पहले महावीर ने अहिंसा की जो बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है? कहां बैलगाड़ी का जमाना और कहां जेट का जमाना? कहां महावीर को बिहार के बाहर जाना मुश्किल और कहां आदमी का चांद पर चला जाना? बिलकुल ठीक पूछते हैं आप। लेकिन इस बात का खयाल नहीं है कि कुछ चीजें हैं जो न बैलगाड़ी पर यात्रा करती हैं और न जेट पर। कुछ चीजें हैं जिनका जेट से और बैलगाड़ी से कोई संबंध नहीं है। अंतर्यात्रा के लिए न तो बैलगाड़ी की जरूरत है और न जेट की। अगर अंतर्यात्रा में बैलगाड़ी की जरूरत होती तो महावीर की बात गलत हो जाती। अंतर्यात्रा तो आज भी वैसी ही होगी जैसी ढाई हजार साल पहले होती थी और करोड़ वर्ष बाद भी जब कोई भीतर जाएगा तो वही विधि है बाहर को छोड़ने की और भीतर जाने की।

भीतर जाने में कभी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। और जो भीतर है उसमें भी समय से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह समय के बाहर है। वह कालातीत है। इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म इसी अर्थ में सनातन है। धर्म का अनुभव सनातन है, सामयिक नहीं है। उसका काल से कोई संबंध नहीं है। जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होगा वह उसी सत्य को उपलब्ध होगा जिस सत्य को कभी कोई उपलब्ध हुआ या कोई कभी उपलब्ध होगा। दो सत्य नहीं है। सत्य न नया है, न पुराना है। सत्य चिरंतन है, वही है। उसे पाने के लिए हमारा मन बड़े अधैर्य में है। हम चाहते हैं कोई सस्ती तरकीब, कोई ऐसी तरकीब कि एक गोली खा लें और आत्मज्ञान उपलब्ध हो जाए। कोई ऐसी तरकीब कि एक बटन दबाएं और आत्मा उपलब्ध हो जाए। हम इस फिराक में हैं। क्योंकि असल में शायद हमें आत्मा को उपलब्ध करने की कोई अभीप्सा ही नहीं है। सारी दुनिया में आदमी चाहता है कि सब कुछ अभी बन जाए, एकदम अभी हो जाए। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं जो अभी अगर करना चाहेंगे तो कभी न होंगी क्योंकि अभी करने वाला चित्त इतना तनावग्रस्त होता है कि अभी नहीं कर सकता।

एक छोटी सी कहानी समझाऊं। कोरिया में भिक्षुओं की एक कहानी है। एक वृद्ध भिक्षु ने अपने जवान भिक्षु के साथ एक नदी को पार किया है। नाव से उतरे हैं, दोनों के ऊपर ग्रंथों का बोझ है जैसा भिक्षुओं के ऊपर होता है। बोझ को लेकर उतरे हैं, जल्दी से केवट से पूछा है कि गांव कितनी दूर है क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढलने पर गांव के दरवाजे बंद हो जाते हैं। सूरज ढलने के करीब है। हम पहुंच पाएंगे या नहीं। रात तो न हो जाएगी। जंगल है, अंधेरा है, खतरा है। केवट से नाव को बांधते हुए धीरज से कहा कि अगर धीरे-धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो। लेकिन अगर जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है। उन दोनों ने जब यह बात सुनी तो कहा कि यह तो पागल आदमी है, इसकी बातों में पड़ना तो झंझट का काम है, भागो, क्योंकि है कह रहा है कि धीरे-धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो, जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है। इस आदमी से क्या पूछना? दोनों भागे।

सूरज ढलने लगा है और वे भाग रहे हैं। अंधेरा होने लगा है, अंधेरा रास्ता है, पहाड़ी रास्ता है, अनजान है। बूढ़ा आदमी जो है, वह गिर पड़ा है, घुटने टूट गए हैं। वह केवट नाव बांध कर पीछे आया है और कह रहा है कि मैंने कहा था, मेरा बहुत बार का अनुभव है, जो धीरे गए हैं वे पहुंच गए हैं, वे जल्दी के कारण नहीं पहुंच पाए। एक चित्त की अवस्था हैः जल्दी! अभी! यह विक्षिप्त चित्त की अवस्था है। पश्चिमी देशों में चित्त जल्दी में है, इतनी जल्दी में कि वह भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। भीतर प्रवेश के लिए चाहिए अत्यंत शांत धैर्य वह अभी भी हो सकता है; ऐसा भी नहीं है कि जन्मों के बाद ही होगा अगर जन्मों के बाद की प्रतीक्षा हो तो अभी हो सकता है। और अभी करना हो तो जन्मों तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है।

आखिरी बात आपने यह पूछी है कि नैतिक अहिंसा मिथ्या अहिंसा है, सच्ची अहिंसा नहीं है। नैतिक अहिंसा के पीछे हिंसा मौजूद रहेगी। और एक धार्मिक अहिंसा है जो अहिंसा है इस अर्थ में कि वहां से हिंसा बिदा हो गई है। तो आपने कहा कि इसका मतलब तो यह हुआ कि धर्म अनैतिक है। हां, एक अर्थ में यही मतलब हुआ। अनैतिक के दो रूप हैंः एक तो नीति से नीचे और एक नीति से ऊपर। दोनों अनैतिक हैं। जो नीति से ऊपर उठते हैं वही धर्म को उपलब्ध होते हैं। नीचे भी उतरते हैं लोग। उनको हम अनैतिक कहते हैं। अनैतिक शब्द ठीक नहीं मालूम पड़ता। इसलिए कहना चाहिए अतिनैतिक।

धर्म अतिनैतिक है, वह नैतिक नहीं है। पापी भी अनैतिक है, वह नीति से नीचे उतर आया, उसने खुलकर हिंसा करनी शुरू कर दी। वह पापी है। नैतिक वह है जिसने हिंसा भीतर दबा ली और अहिंसा का बाना पहन लिया। यह सज्जन है, यह नैतिक है। धार्मिक वह है जिसकी हिंसा बिदा हो गई है और अहिंसा ही शेष रह गई है। यह अतिनैतिक है, यह भी अनैतिक है। यह भी नीति के पार चला गया। इसको भी नैतिक नहीं कहा जा सकता।

महावीर की, बुद्ध की या कृष्ण की वाणी नैतिक नहीं है, अतिनैतिक है और इसलिए जब पश्चिम में पहली बार भारतीय ग्रंथों का अनुवाद शुरू हुआ तो पश्चिम के विचारकों को तकलीफ मालूम पड़ी कि इनमें नीति का तो कोई उपदेश ही नहीं है। उपनिषदों के पूरे अनुवाद हो गए लेकिन उन्हें मालूम हुआ कि कहीं कोई नीति का उपदेश ही नहीं है। ऐसा होना ही चाहिए। धर्म तो नीति से बहुत ऊपर की बात है। संत सज्जन से बहुत भिन्न बात है। सज्जन थोपा हुआ दुर्जन है। भीतर मौजूद है

दुर्जनता। ऊपर सज्जनता है। संत वह है जिसके सज्जन, दुर्जन दोनों बिदा हो गए हैं। वहां कोई भी नहीं है। न नीति है, न अनीति है। वहां सब शांति है।

प्रश्नः आपने कहा कि बाह्य आचरण से सब हिंसक हैं। इसके साथ-साथ आपने कहा कि चूंकि रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद मांस खाते थे, इसलिए वे अहिंसक नहीं थे। साथ ही साथ आपने कहा कि बुद्ध और महावीर अहिंसक थे। बुद्ध तो मांस खाते थे, वह अहिंसक कैसे थे?

उत्तरः यह बात आपने अच्छी पूछी। मेरा मानना है कि आचरण से अहिंसा उपलब्ध नहीं होती। मैंने यह नहीं कहा कि अहिंसा से आचरण उपलब्ध नहीं होता। इसके फर्क को समझ लीजिए आप। हो सकता है कि मैं मछली न खाऊं। लेकिन इससे मैं महावीर नहीं हो जाऊंगा। लेकिन यह असंभव है कि मैं महावीर हो जाऊं और मछली खाऊं। इस फर्क को आप समझ लें। आचरण को साधकर कोई अहिंसक नहीं हो सकता लेकिन अहिंसक हो जाए तो आचरण में अनिवार्य रूपांतरण होगा।

दूसरी बात यह कि मैंने बुद्ध और महावीर को अहिंसक कहा लेकिन बुद्ध मांस खाते थे। बुद्ध मरे हुए जानवर का मांस खाते थे। उसमें कोई भी हिंसा नहीं है। लेकिन महावीर ने उसे वर्जित किया किसी संभावना के कारण। जैसा कि आज जापान में है। सब होटलों के, दूकानों के ऊपर तख्ती लगी हुई है कि यहां मरे हुए जानवर का मांस मिलता है। अब इतने मरे हुए जानवर कहां से मिल जाते हैं, यह सोचने जैसा है। बुद्ध चूक गए, बुद्ध से भूल हो गई। हालांकि मरे हुए जानवर का मांस खाने में हिंसा नहीं है क्योंकि हिंसा का मतलब है कि मार कर खाना। मारा नहीं है तो हिंसा नहीं है। लेकिन यह कैसे तय होगा कि लोग फिर मरे हुए जानवर के नाम पर मारकर नहीं खाने लगेंगे। इसलिए बुद्ध से चूक हो गई है और उसका फल पूरा एशिया भोग रहा है।

बुद्ध की बात तो बिलकुल ठीक है लेकिन बात के ठीक होने से कुछ नहीं होता किन लोगों से कह रहे हैं, यह भी सोचना जरूरी है। महावीर की समझ में भी आ सकती है यह बात कि मरे हुए जानवर का मांस खाने में क्या कठिनाई है। जब मर ही गया तो हिंसा का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जिन लोगों के बीच हम यह बात कह रहे हैं, वह कल पीछे के दरवाजे से मारकर खाने लगेंगे। वह सब सज्जन लोग हैं, वह सब नैतिक लोग हैं, बड़े खतरनाक लोग हैं। वह रास्ता कोई न कोई निकाल ही लेंगे वह पीछे का कोई दरवाजा खोल ही लेंगे। मैं बुद्ध और महावीर दोनों को पूर्ण अहिंसक मानता हूं। बुद्ध की अहिंसा में रत्ती भर कमी नहीं है लेकिन बुद्ध ने जो निर्देश दिया है, उसमें चूक हो गई है। वह चूक समाज के साथ हो गई है। अगर समझदारों की दुनिया हो तो चूक होने का कोई कारण नहीं है।

एक मित्र यह पूछते हैं कि विवेक के लिए विवेक के प्रति जागना क्या अपनी अविवेक बुद्धि के साथ प्रतिहिंसा न होगी। फिर आप मेरे विवेक का मतलब नहीं समझे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवेक से अविवेक को काटें। अगर काटें तो हिंसा होगी। मैं तो यह कह रहा हूं कि आप सिर्फ विवेक में जागें। कुछ है जो कट जाएगा, कट जाएगा इस अर्थ में कि वह था ही नहीं, आप सोए हुए थे इसलिए था, अन्यथा वह गया। कटेगा भी कुछ नहीं, अंधेरा कटेगा थोड़े ही दिए के जलाने से। इसलिए अंधेरे के साथ कभी भी हिंसा नहीं हुई है। वह नहीं रहेगा बस।

विवेक जगेगा और अविवेक चला जाएगा। इसमें मैं हिंसा नहीं देख पाता हूं जरा भी। आप यह कहते हैं कि यह तो ठीक दिखाई पड़ता है कि दिए को जलाया और अंधेरा चला गया। इसको हम सच मान सकते हैं क्योंकि यह हमारा अनुभव है। दूसरे को कैसे सच मानें? मैं कहता ही नहीं कि मानें। अनुभव हो जाएगा तो मान लेंगे। इसको मैं कहता भी नहीं कि माने मैं कहता हूं कि आप प्रयोग करके देखें। यदि संशय सच में ही जगा है तो प्रयोग करवा कर ही रहेगा। तभी संशय सच्चा है। तो प्रयोग करके देख लें। विवेक जग जाए और अगर अहिंसा रह जाए तो समझना कि मैं जो कहता था, सत्य नहीं कहता था। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हुआ है और न हो सकता है।

मेरे प्रिय आत्मन

मैं सोचता था कि क्या आपसे कहूं? सच ही कोई उपदेश देने का सवाल नहीं है। और न ही उपदेश से कभी कोई लाभ हुआ है। वरन उपदेशों के कारण ही मनुष्य विभाजित हुआ है, खंडित हुआ है, संप्रदाय और पंथ बने हैं। मैं जो कह रहा

हूं, वह कोई उपदेश नहीं है। बल्कि मेरे अंतःकरण का आपके सामने खोलना है। ऐसी कोई आकांक्षा नहीं है कि मैं जो कहूं। उसे आप सत्य मानें। वरन यही मैं कहना चाहता हूं। कि कोई भी दुनिया में कुछ कहें, उस किसी को भी सत्य मानना उचित नहीं है। जब तक कि खुद उसका अनुभव न हो जाए।

यदि हम दूसरों की बातों को सत्य मान लेंगे। तो स्वयं सत्य को जानने से वंचित रह जाएंगे। जो भी विश्वास बना लेता है, और दूसरों को स्वीकार कर लेता है। वह खुद के उदघाटन से अपने ही हाथों, अपने ही हाथों अपने उदघाटन से दूर हो जाता है। लेकिन हम सारे लोग ही विश्वास किए हुए हैं। हम सारे लोग ही किसी धर्म को, किसी पंत को, किसी शास्त्र को, अंगीकार किए हुए हैं। और यही कारण है कि हम सत्य को जानने में समर्थ नहीं हो पाएंगे। सत्य को जानने के लिए जरूरी है कि मन, दूसरों को स्वीकार करने की घातक प्रवृत्ति से मुक्त हो जाए। लेकिन हमें सिखाया गया है कि हम अनुकरण करें, दूसरों को आदर्श मानें। और उनको स्वीकार करें।

मेरी कोई वैसी प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि मेरी दृष्टि यही है। कि जब तक कोई मनुष्य किसी दूसरे का अनुसरण करें, तब तक स्मरण रखें कि वह सत्य का अनुसरण नहीं कर रहा है। और क्या कारण है उस पर मैं आपसे चर्चा करूंगा।

इस दृष्टि से मैं भी बैठा सोचता रहा कि कौन-सी बात आपसे कहूं। जो संभव है—आपके लिए विचार का, विवेक का, सोचने का, मौका दे सकें। विश्वास का नहीं, स्वीकार करने का नहीं, बल्कि विचार का, सोचने का मौका दे सकें। तो मुझे दिखाई पड़ता है, और हम सभी को विचार में भी आता होगा। ऐसा कोई मनुष्य मुझे आज तक नहीं मिला। जो अपने जीवन से संतुष्ट हो, जो जैसा है, वैसा ही रहने से तृप्त हो। जैसा उसे जीवन मिला है, जो उतने ही पर रुक जाना चाहता हो। ऐसा कोई मनुष्य मुझे कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। फिर चाहे वह असंतोष कोई भी दिशा पकड़ लें। चाहे वह छोटे मकान की जगह, बड़ा मकान बनाना चाहता हो। और चाहे थोड़े धन की जगह, ज्यादा धन इकट्ठा करना चाहता हो। चाहे बीमारी की जगह स्वस्थ होना चाहता हो। या छोटे पद से, बड़े पद पर जाना चाहता हो। लेकिन जो जहां है, वहां कोई भी रहने को राजी नहीं है।

इस सारी जमीन पर और सारे मनुष्य के इतिहास में जो जहां है वहां कोई भी रहने को राजी नहीं है। हम सारे लोग उस जगह को छोड़ना चाहते हैं। जहां है, और उस जगह होना चाहते हैं जो हमारी कल्पनाओं में है, और सोचते हैं कि वहां होने से सुख होगा, शांति होगी, आनंद होगा, संतोष होगा। लेकिन एक और अदभुत अनुभव है कि आज तक जमीन पर किसी भी व्यक्ति ने चाहे किसी भी स्थान को उपलब्ध कर लिया हो। और चाहे किसी पद को पा लिया हो। और चाहे किसी धन को पा लिया हो। कोई संपत्ति पा ली हो। कोई साम्राज्य पा लिया हो। यह आकांक्षा और आगे जाने की उसी भांति कायम बनी रहती है। यह आकांक्षा नष्ट नहीं होती है।

इससे कोई कहेगा कि आकांक्षा ही छोड़ देनी चाहिए। मैं नहीं कहूंगा, इससे कोई कहेगा फिर आकांक्षा की ही जरूरत नहीं है। जब वह कहीं तृप्त ही नहीं होती, यह मैं नहीं कहूंगा। मैं तो यही कहूंगा, अगर हम इस आकांक्षा को समझें। तो एक अदभुत बात हमारे सामने स्पष्ट हो जाएगी। अगर मनुष्य अपनी वासना को, अपनी डिसायर को, अपनी आकांक्षा को समझे लें। तो उसके जीवन में एक अदभुत सत्य का उदघाटन हो जाएगा।

सिकंदर इधर पूर्व की तरफ मुल्कों को जीतने आता था। एक फकीर से उसने बातचीत की। उस फकीर ने कहा—कि मित्र! अगर तुमने सारी दुनिया जीत ली, तो फिर क्या करोगे? यह ठीक ही था पूछना। क्योंकि सिकंदर ने कहा कि सारी दुनिया को मैं जीत लेना चाहता हूं। पर फकीर ने उससे कहा—कि तुमने अगर सारी दुनिया जीत ली। तो फिर क्या करोगे? कभी इस पर सोचा। सिकंदर एक क्षण को ठहर गया। और उसने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत का प्रश्न खड़ा कर दिया। यह तो मुझे कभी खयाल में नहीं आया। निश्चित ही अगर सारी दुनिया जीत ली। तो मैं बहुत मुश्किल में पड़ जाऊंगा। क्योंकि दूसरी दुनिया कोई जीतने को है नहीं, एक ही दुनिया है। तो उस फकीर ने कहा—कि तुम सारी दुनिया जीतकर भी मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि जीत की आकांक्षा इतनी की इतनी ही बनी रहेगी। वह नष्ट नहीं होगी।

जीवन में हम कुछ भी पा लें। फिर भी ऐसा लगता है कि पाने की आकांक्षा खाली रह गई है। हम कुछ भी उपलब्ध कर लें फिर भी पाया जाता है कि भीतर काम अधूरे हैं। भीतर प्राणों को मिलना नहीं हुआ। इसका अर्थः इसको अर्थ बहुत ही

स्पष्ट है अगर थोड़ा हम अपने भीतर खोजें तो अर्थ दिखाई पड़ेगा। आकांक्षा जहां पैदा होती है, वह तो हमारा अंर्तात्मा है। और उस आकांक्षा को पूरा करने के लिए जहां हम खोज करते हैं, वह बाहर की दुनिया है। इन दोनों के बीच असंगति है, जहां प्यास लगी है। वहीं पानी को खोजना पड़ेगा और जहां आकांक्षा अनुभव हुई है। वहीं तृप्ति को खोजना होगा। आकांक्षा प्राणों में उठती है, और खोज पदार्थों में चलती है। तो यह कैसे संभव होगा, कि आकांक्षा पूरी हो जाए। आकांक्षा प्राणों में स्पंदित होती है, तो खोज भी प्राणों में करनी होगी।

और अगर खोज हम पदार्थ में करेंगे। और आकांक्षा प्राणों में होगी, तो इस खोज को हम कितना ही पालें। हम पाएंगे कि प्राण उतने के उतने प्यासे रह गए है। हमारी खोज व्यर्थ हो गई है। सबसे बुनियादी बात जो प्रत्येक मनुष्य को अपनी वासना को ध्यान में विचार करने से ज्ञात होगी। वह यह ज्ञात होगी, कि वासना हमारे प्राणों के किसी केंद्र पर है।

मैं छोटी सी कहानी कहा करता हूं। शायद उससे आपको खयाल में आए। एक सूफी फकीर औरत हुई राबिया, एक दिन सांझ को लोगों ने देखा, कि वह अपने घर आकर अंधेरे में कुछ खोजती है। राहगीरों ने पूछा, कि क्या बात है? उसने कहा—मैं बूढ़ी औरत हूं। कपड़ा सीती थी मेरी सूई गिर गई है। उसे मैं खोजना चाहती हूं। तो लोगों ने पूछा, वह सूई गुमी कहां है? उसने कहा—यह मत पूछिए, मैं बहुत गरीब स्त्री हूं। मेरा अपमान न करे, उन्होंने कहा, इसमें अपमान की कौन-सी बात है। यह पूछने में कि सूई गुमी कहां है। उसने कहा, मत पूछिए। मेरे घर में कोई दीया नहीं है, सूई तो भीतर गुमी है।

सांझ को कपड़ा सीती थी, सूई गिर गई। मैंने उसे खोजा लेकिन तब तक सूरज डूब गया। बाहर की दहलान में थोड़ी रोशनी थी तो मैं खोजते हुई दहलान में आ गई। फिर मैंने दहलान में खोजा। तब तक सूरज बिलकुल डूब गया। फिर सड़क पर रोशनी थी तो मैं सड़क पर खोजने आ गई। तो उसने कहा—कि सड़क पर ही खोजे। क्योंकि घर में तो रोशनी नहीं है, मेरे पास कोई दीया नहीं है, कोई तेल नहीं है। उन्होंने कहा, कि पागल बूढ़ी औरत! तुझे यह भी पता नहीं है कि सूई जहां गुमी है, वही खोजनी होगी। उसे बाहर खोजने से कुछ भी न होगा। चाहे वहां कितनी ही रोशनी हो। चाहे वहां कितना ही प्रकाश हो, चाहे खूब सूरज वहां मौजूद हो तो भी खोजने से उपलब्ध नहीं होगा। खोजने के पहले जानना जरूरी है कि खोया कहां है। खोजने के पहले जानना जरूरी है, कि चीज खोई कहां गई है। और इसके पहले कि मैं दूसरों के मकानों में खोजने चला जाऊं। क्या यह उचित नहीं होगा, कि मैं अपने मकान में खोज लूं।

यह जमीन बहुत बड़ी है, और अगर मैं इसमें खोजने निकल गया तो मेरे मकान का नंबर मेरे जीवन में शायद ही आ पाए। इसलिए उचित है, कि मैं पहले मकान में खोज लूं और फिर बाहर की यात्रा पर जाऊं। लेकिन हम सारे लोग बाहर की यात्रा पर निकल जाते हैं। बिना उसमें खोजे जो कि हमारा मकान है, जहां के हम है। तो उस बूढ़ी स्त्री ने कहा कि मैं तो जैसी दुनिया करती है। वैसा ही मैंने सोचा सारी दुनिया बाहर खोजती है। और कोई भी तो यह नहीं पूछता कि खोया कहां है। तो मुझसे ही क्यों व्यर्थ की बातें पूछ रहे हो। कि सूई कहां खोई है? जहां खोज सकती हूं, वहां खोज रही हूं। खोने की सवाल ही कहां है, कोई पूछता ही नहीं। कि खोने का कोई सवाल है। लेकिन हमें लगेगा, कि बूढ़ी स्त्री गलती कर रही है। असल में बूढ़ी स्त्री दिखाना चाहती है। कि हम गलती कर रहे हैं। उसने उन युवकों से कहा—कि मित्रों तुम भी यही कर रहे हो। और सभी लोग बाहर खोज रहे हैं, बिना यह पूछे कि कहां खोया है।

हम सारे लोग खोजेंगे धन में, यश में और तरह की संतुष्टियों में, और तरह के सुखों में और अंततः हम पाएंगे कि हाथ रिक्त रह गए, खाली रह गए है। क्योंकि हममें एक बुनियादी प्रश्न अपने से नहीं पूछा। कि हम जिसकी खोज कर रहे हैं उसे खोया कहां है, निश्चित आप कहेंगे अगर हम यह भी पूछे, कि उसे कहां खोया है। तो भी क्या होगा? बहुत कुछ होगा, अगर हम यह पूछे, कि हम किस बात की खोज कर रहे हैं? बहुत कम लोग है जो अपने से ठीक-ठीक स्पष्ट पूछते हो, कि वे जीवन में क्या खोज रहे हैं? क्या खोज रहे हैं हम? और अगर हमें यह भी ज्ञात नहीं है कि हम क्या खोज रहे हैं? तो यह दौड़ बिलकुल अंधी और पागल है। यह बिलकुल विक्षिप्त दौड़ है। यह बिलकुल मैडनेस है जो हम कर रहे हैं। और इसके अंत में कोई हल नहीं हो सकता। कोई समाधान नहीं हो सकता। इसलिए बहुत लोग जीते हैं, लेकिन बहुत कम लोग जीवन

के अर्थ को उपलब्ध हो पाते हैं। बहुत लोग दौड़ते हैं, लेकिन बहुत कम लोग मंजिल को उपलब्ध हो पाते हैं। बहुत लोग चलते हैं, लेकिन बहुत कम लोगों का चलना सार्थक हो पाता है। कोई कहीं पहुंचते हैं, ऐसे बहुत थोड़े लोग होते हैं।

जबकि सबकी संभावना है कि प्रत्येक पहुंच जाए। फिर अगर कभी हमारे मन में आकांक्षा भी उठती है, जानने का खयाल भी उठता है। कि हम जानें, कि जीवन किसलिए है। जीवन के सत्य को जाने, अगर यह प्रश्न भी उठता है। एक तो बहुत लोगों को यह प्रश्न उठता नहीं। जब तक कि मौत करीब न आने लगे। मौत करीब आने लगती है, लोग धार्मिक होने लगते हैं। इससे ज्यादा धर्म का और कोई अपमान हो सकता है। कि जब मौत करीब आने लगे तो कोई आदमी धार्मिक होने लगता है। जब जीवन छूटने लगे और हम घबराने लगे और जब हाथ की शक्तियां जाने लगे और प्राण कंपित होने लगे। और अंधकार छाने लगें तब हम धर्म का विचार करने लगे। भय में कंपित, मंदिरों में जाने लगे और शास्त्रों पर सिर झुकाने लगें। और गुरुओं के पैर पकड़ने लगे कि यह कोई धर्म का सम्मान है। लेकिन सारी जमीन पर मंदिर और चर्च बूढ़े आदमियों से भरे रहते हैं। और सारी जमीन पर धर्म के जो संगठन है। उनमें सिवाय बूढ़ों के और कोई भी उत्सुक नहीं होता है।

यह नहीं है कारण, दुनिया में धर्म के अपमान का, कि नास्तिक है दुनिया में। कारण यह है कि धर्म में केवल बूढ़े लोग उत्सुक है। और मरने के करीब उत्सुक है, धर्म इस कारण अपमानित हो गया। उसके जीवन से जड़ें खो गई। उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अगर कुछ लोग उत्सुक भी होते हैं, युवा होते हैं, सोचते हैं, विचारते हैं या बूढ़े होते हैं। और उत्सुक होते हैं तो उनकी उत्सुकता एक बहुत गलत दौड़ पकड़ लेती है। जब भी कोई व्यक्ति सत्य को जानने को या जीवन के अर्थ को जानने को उत्सुक होता है। तो वह क्या करता है? तब उसके मन के सामने कौन से विकल्प खड़े होते हैं। तब उसके मन के सामने पहला विकल्प तो यह खड़ा होता है। कि वह किसी धर्म में पैदा हुआ है। दुनिया का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है, कि हम पैदा किसी धर्म में हो जाते हैं। और इसलिए धर्म में जन्म पाना मुश्किल हो जाता है।

दुनिया में बड़े से बड़े दुर्भाग्यों में एक दुर्भाग्य यह है कि हर आदमी किसी धर्म में पैदा हुआ है। कोई आदमी स्वतंत्र पैदा नहीं हो पाया है। कि सत्य के संबंध में खोज कर सकें। इसके पहले कि वह विचार करें, कुछ संस्कार, कुछ विश्वास, कुछ विचार उसके मस्तिष्क में डाल दिए जाते हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई ईसाई है और यह होना बिलकुल झूठा है, क्योंकि यह हमें सिखाया जाता है। बचपन से, एक प्रचार किया जाता है। एक हवा पैदा की जाती है, और कुछ बातें हम पकड़ लेते हैं। और जीवन भर उन बातों को दोहराते रहते हैं। तो जब भी कोई आदमी उत्सुक होता है कि मैं जानूं, कि सत्य क्या है। तो उसकी खोज शुरू भी नहीं हो पाती। उसके भीतर बिठाए गए शास्त्र उत्तर दे देते हैं। कि सत्य यह है, आत्मा सत्य है। परमात्मा सत्य है। परलोक सत्य है। यह सब संसार असार है। और मोक्ष को खोज सकते है।

यह झूठा उत्तर होता है। क्योंकि उसके आत्मा से नहीं आता है। उसकी बुद्धि से आता है। उसके ऊपर डाले गए प्रचार से आता है। उसके ऊपर डाले गए संस्कारों से आता है। मैं एक छोटे से अनाथालय में गया। वहां कोई सौ-डेढ़-सौ बच्चे होंगे। वहां के संयोजकों ने मुझसे कहा—कि यहां हम इन्हें धर्म की शिक्षा देते हैं। मैं थोड़ा हैरान हुआ क्योंकि मैं आज तक समझ नहीं पाया। कि धर्म की कोई शिक्षा हो सकती है। धर्म की साधना तो हो सकती है। लेकिन शिक्षा नहीं हो सकती। और शिक्षा अगर धर्म की होगी। तो साधना मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि वह सीखी हुई बातें मन में बैठ जाएंगी। और जानने के द्वार बंद हो जाएंगे। मन क्लोसड हो जाएगा। सीखा हुआ ज्ञान, वह जो लरनिंग होती है। वह मन पर बैठ जाती है और जानने के द्वार बंद कर देती है।

इसलिए पंडित स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता है। चाहे और कोई भी कर जाए, उसके जाने का कोई रास्ता नहीं है। क्राइस्ट ने एक वचन कहा है—कि सूई के छेद से ऊंट निकल जाए लेकिन धनी नहीं निकल सकेगा। मैं आपसे कहता हूं, कि सूई के छेद से धनी भी निकल जाए, लेकिन पंडित नहीं निकल सकेगा। क्योंकि धनी का धन बिलकुल बाहर फैला हुआ और पंडित का धन भीतर बैठा हुआ है। धनी का धन चोर भी ले जा सकते हैं। पंडित का धन कोई भी नहीं ले जा सकता। वह धनी बहुत गहरे अर्थों में है। धनी ने रुपए इकट्ठे किए है, सिक्के इकट्ठे किए है। पंडित ने संस्कार, विचार और सिद्धांत इकट्ठे किए है। जो उसके प्राण पर इकट्ठे है। जो धूल की भांति, इटों, पत्थरों की भांति उसके प्राणों को रोके हुए है। वह

उनसे मुक्त नहीं हो पाता। इस दुनिया में सबसे जटिल व्यक्ति वह होता है। जिसने बहुत सी बातें सीख रखी है। सबसे सरल व्यक्ति वह होता है जिसने एक भी बात जान लीं। सबसे सरल व्यक्ति वह होता है जिसने एक भी बात जान ली है। और सबसे जटिल व्यक्ति वह होता है जिसने बहुत सी बातें सीख रखी है। सीखना बड़ी जटिल बात है। तो मैंने उनसे कहा—कि शिक्षा तो धर्म की हो नहीं सकती। कैसे आप सिखाते होंगे। उन्होंने कहा—आप क्या बात करते हैं। हमने सारी बातें सीखा दी है। आप कुछ भी पूछिए तो उत्तर मिल जाएगा।

मैंने कहा—आप पूछें मैं सुनूंगा, उन्होंने खुद ने सारे बच्चों से पूछा, सारे बच्चे इकट्ठे किए। और उनसे पूछा आत्मा है। उन सारे बच्चों ने हाथ उठाया, और कहा कि आत्मा है। उन्होंने पूछा—आत्मा कहां है। उन सारे बच्चों ने हृदय पर हाथ रखा और कहा यहां है। मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा, कि हृदय कहां है। वह सोचने लगा और बोला यह तो हमें सिखाया नहीं गया। मैंने उनको कहा, कि ये बातें आप इनको सिखाकर इनके साथ सबसे बड़ा अन्याय कर रहे हैं। बच्चों के साथ इससे बड़ा कोई अन्याय नहीं हो सकता। कि सत्य के संबंध में कुछ सिद्धांत उन्हें सिखा दिए जाए। क्योंकि जब भी उनका जीवन प्रश्न खड़ा करेगा। तो यह झूठी सीखी हुई बातें उत्तर दे देंगी और वे तृप्त हो जाएंगे।

खतरा क्या है? खतरा यह है कि उत्तर भीतर से नहीं आएगा। शास्त्र से आएगा, सीखा हुआ होगा। सीखा हुआ उत्तर कोई उत्तर हो सकता है। और सीखे हुए उत्तर कितने दूर तक ले जा सकते हैं। सीखे हुए उत्तर कितने दूर तक ले जात सकते हैं। जीवन जानना होता है, सीखना नहीं होता। जीवन, जीवंत वस्तु है। सीखे उत्तर गणित में हो सकते हैं। जीवन में नहीं हो सकते। जीवन को जीने से जानो, हम एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है। वह आपसे कहूं।

जापान में एक गांव में दो मंदिर थे। एक दक्षिण का मंदिर कहलाता था, एक उत्तर का मंदिर कहलाता था। दोनों में बड़ी प्रतिस्पर्धा थी, बड़ा विरोध था और आप जानते होंगे। दुनिया में सभी मंदिरों में बड़ा विरोध और बड़ी प्रतिस्पर्धा है। दुनिया में जितनी बड़ी शत्रुता मंदिर और मंदिर के बीच है उतनी बड़ी शत्रुता किसी के बीच नहीं है। और दुनिया में जितनी शत्रुता और जितनी हिंसा मंदिर और मंदिर के कारण पैदा हुई है। और किसी चीज से पैदा भी नहीं हुई। मंदिरों के नाम पर मनुष्य का जितना पतन हुआ है। उतना किसी और चीज के नाम पर हुआ भी नहीं है। उन दो मंदिरों में बड़ा विरोध था। और एक-दूसरे के प्रति निरंतर विरोध की कुछ बातें, उनके पुरोहित प्रचारित करते रहते थे। दोनों पुरोहितों के पास दो छोटे बच्चे थे। जो उनकी साग-सब्जी लाने की ओर छोटे-मोटे काम करते थे। उनको भी मना ही था, कि वे आपस में बातचीत न करें। लेकिन बच्चे-बच्चे है और बड़ों की दुश्मनी नहीं जानते। और अगर दुनिया बच्चों के हाथ में छोड़ दी जाए, दुनिया में कोई दुश्मनी नहीं होगी, कोई युद्ध नहीं होगा। लेकिन बड़ों के हाथ में दुनिया है। और बड़े मरने के पहले छोटे-बच्चों को भी सब बातें सिखा जाते हैं। सारी दुश्मनी, सारा संघर्ष, सारा द्वंद, सारी राजनीति, सारा धर्म, उनको बड़ा डर रहता है। कि हम मर जाएंगे लेकिन हमारे झगड़े न मर जाए। तो हजारों साल की मूर्खताएं वे बच्चों को सिखा देते हैं ताकि वे तैयार रहें। और दुश्मनियां कायम रहें और आदमी-आदमी दूर बना रहे।

उनको डर था कि वे बच्चे आपस में न आने दे। बच्चे बच्चे है, उनका मन होता था, कि वे आपस में मिले। एक दिन उन्होंने देखा कि दोनों पुजारी भीतर है। वे बाजार सब्जियां लेने जाते थे। तो उत्तर के मंदिर के लड़के ने दक्षिण के मंदिर के लड़के से पूछा, मित्र! कहां जा रहे हो? उस लड़के ने कहा—जहां हवाएं ले जाए। वह बड़ा हैरान हुआ। यह उत्तर सुनकर, उसे कुछ सूझ न पड़ा कि क्या उत्तर दें। वापस लौटकर उसने अपने गुरु को कहा, कि आज मैं बड़ी दिक्कत में पड़ गया। मैंने उस मंदिर के लड़के से पूछा कि कहां जा रहे हो? वह बोला, कि जहां हवाएं ले जाए।

उसके गुरु ने कहा—कि देखो! उस मंदिर के बच्चे से भी हारना बहुत बुरी बात है। कल तुम जाना और फिर यही पूछना। कहां जा रहे हो? वह कहेगा, जहां हवा ले जाए। तो तुम उससे कहना, कि अगर हवाएं न होती तुम कहां जाते। तुम उससे यह कह देना। अगर हवाएं न होती, तो तुम कहां जाते? वह बच्चा दूसरे दिन तैयार था। सीखा हुआ उत्तर भीतर था वह गया। उसने जाते से पूछा, कि मित्र कहां जा रहे हो। उसने सोचा कि अब वह कहेगा कि जहां हवा ले जाएं। उसने सोचा कि अब वह कहेगा कि जहां हवाएं ले जाएं। लेकिन वह लड़का बोला—जहां पैर ले जाए। अब उसका उत्तर तो यह था सीखा हुआ। कि अगर हवाएं न हो तो तुम कहां जाओगे? वह बड़ी दिक्कत में पड़ा कि क्या करें।

वह वापिस लौट कर आया और गुरु से उसने कहा, कि वह लड़का तो बदल गया। वह आज कहने लगा, कि जहां पैर ले जाए। उसके गुरु ने कहा, देखो उससे हारना ठीक नहीं है। कल तुम कहना कि अगर तुम्हारे पैर न होते, और तुम लंगड़े होते तो जिंदगी में कहां जाते? वह दूसरे दिन फिर तैयार पहुंचा उसने लड़के से पूछा—कि कहो मित्र कहां जा रहे हो? वह बोला सब्जी खरीदने। वह उत्तर जो सीखे हुए होते हैं। इतने ही हास्यास्पद हो जाते हैं। लेकिन हमारे सब उत्तर सीखे हुए है। अगर मैं आपसे पूछूं, आत्मा है? अगर आप कहे कि है तो जरा विचार करना, क्या यह उत्तर, उत्तर के मंदिर वाले लड़के का उत्तर नहीं है।

अगर मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है! और आप कहें है, तो जरा विचार करना यह सीखा हुआ तो नहीं है। अगर आप कहें नहीं है, अगर आप कम्युनिस्ट मुल्क में पैदा हुए हो। नास्तिक घर में पैदा हुए हो तो आप कहें नहीं है। तो भी विचार करना कि यह उत्तर सीखा हुआ तो नहीं है। क्योंकि आस्तिकता भी सीखी जा सकती है। नास्तिकता भी सीखी जा सकती है। लेकिन जीवन को जानना होता है। इसलिए न आस्तिक जीवन को जान पाता है, न नास्तिक जीवन को जान पाता है। जो जानते हैं, उनका मार्ग कुछ और होता है। हम सारे लोग सीखे हुए उत्तरों से बेचैन और परेशान है। लेकिन हम सारे लोग उत्तर सीखे हुए बैठे है। और इन उत्तरों को पकड़ रखने में एक रस है, एक आनंद है, इसलिए पकड़े हुए है। नहीं तो कौन पकड़ेगा, रस है ज्ञानी होने के दंभ का। बिना जाने हुए ज्ञानी होने का मजा आ जाता है। अगर हम कुछ उत्तर सीख लें। इसलिए हम सारे लोग सीखना चाहते हैं।

कल ही मुझे किसी ने कहा—कि शास्त्रों के बड़े अध्ययन में मैं लगा हूं। मैंने कहा—किसलिए? इसलिए न कि कुछ उत्तर सीखे जा सके। लेकिन उत्तर सीख कर क्या कोई जीवन की समस्या हल होती है। मैं कितने ही उत्तर सीख लूं। दुनिया की सारी समस्याओं को उत्तर सीख लूं। तो भी मेरे जीवन की समस्या हल होगी। जीवन की समस्या कुछ बातें सीखने से हल नहीं होती। बल्कि जीवन में प्रवेश करने से हल होती है। तो जब कोई व्यक्ति उत्सुक होता है, सत्य को या जीवन को जानने को। तो सबसे बड़ी बाधा जो खड़ी हो जाती है। वह खड़ी हो जाती है। कि वह कुछ बातों को सीखने लगता है, जानने नहीं बल्कि सीखने की दिशा में चला जाता है।

लरनिंग की अलग दिशा है, नोइंग की अलग दिशा है। जानने की अलग दिशा है, सीखने की अलग दिशा है। विज्ञान सीखा जा सकता है। धर्म सीखा नहीं जा सकता। इसलिए विज्ञान के विद्यालय हो सकते हैं। धर्म का कोई विद्यालय नहीं हो सकता। विज्ञान के ग्रंथ हो सकते हैं। धर्म का कोई ग्रंथ नहीं हो सकता। इसलिए विज्ञान में उपाधियां हो सकती है। डिग्रीयां हो सकती है। परीक्षाएं हो सकती है। धर्म की कोई उपाधियां, कोई डिग्रीयां और परीक्षाएं नहीं हो सकती है। हालांकि होती है। हालांकि चलती है, और जब कोई धर्म की परीक्षा पास कर लेता है। तो सोचता है कि मैं धार्मिक हुआ। इससे ज्यादा नासमझी की और कोई बात हो सकती है। धर्म इतनी जीवंत बात है, स्मरण रखें, पदार्थ के संबंध में सिखा जा सकता है। पदार्थ को जाना नहीं जा सकता। क्योंकि जानने के लिए भीतर प्रवेश करना होगा। हम पदार्थ में कितने ही भीतर प्रवेश करें, बाहर ही खड़े रहेंगे। भीतर नहीं जा सकते। पदार्थ में भीतर प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिए पदार्थ से ज्यादा से ज्यादा परिचय हो सकता है। पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। किसी भी पदार्थ को हम कितना ही जान लें। वह परिचय मात्र है ज्ञान नहीं है। इसलिए विज्ञान रोज बदलता जाता है। जब परिचय गहरा होता है। तो हमें पुराने सिद्धांत छोड़ देने होते हैं, और नए सिद्धांत पकड़ लेने होते हैं। लेकिन नए सिद्धांत को बताने वाला भी कहता है—हाइपोथैटिकल है।

हमारी परिकल्पना है, हम पदार्थ को भी जानते नहीं। न्यूटन भी कहता है, हम पदार्थ को नहीं जानते। इतना परिचय हमें मिला। आइंस्टीन भी कहता है, इतना परिचय हमें मिला। आगे भी हम कहेंगे, इतना परिचय मिला। ऐसा कोई भी दिन कभी नहीं होगा। कि पदार्थ का ज्ञान हो सकें। क्योंकि ज्ञान के लिए अंतः प्रवेश चाहिए। हम पदार्थ के बाहर ही रहेंगे, लाख उपाय करें तो भी पदार्थ के भीतर नहीं प्रवेश कर सकते हैं। भीतर प्रवेश तो केवल स्वयं में हो सकता है। स्वयं के अतिरिक्त और किसी में नहीं हो सकता है। असल में स्वयं में हम प्रविष्ट है ही। हम वहां मौजूद है। हम वहां घुसे हुए है। हम वहां ठहरे हुए है। इसलिए ज्ञान तो केवल स्वयं का हो सकता है, पर का केवल जानकारी हो सकती है। इनफॉरमेशन हो सकती है, जानकारी हो सकती है। परिचय हो सकता है, लेकिन ज्ञान नहीं हो सकता।

इसलिए पर के संबंध में शास्त्र हो सकते है, स्वयं के संबंध में कोई शास्त्र नहीं हो सकता। और स्वयं के संबंध में जो शास्त्र है उनसे उपद्रव उनसे झंझट खड़ी हुई। उनसे कोई ज्ञान खड़ा नहीं हुआ है। स्वयं के संबंध में अगर हमने जानकारी की या लरनिंग की दिशा पकड़ ली तो हम गलत रास्ते पर चले गए। तो हो सकता है आप पंडित होकर समाप्त हो जाए। लेकिन प्रज्ञा को उपलब्ध नहीं होंगे। प्रज्ञा का मार्ग, ज्ञान का मार्ग, अन्यथा है।

रमन महर्षि को किसी जर्मन विचारक ने आकर पूछा, कि मैंने बहुत शास्त्र पढ़े है। अब मैं और कौन से शास्त्र पढ़ूं, कि मुझे ज्ञान उपलब्ध हो जाए। तो रमन ने कहा—कृपा करो जिनको पढ़ा है उनको भूल जाओ। और अब कृपा करो, अब शास्त्रों पर दया करो। शास्त्रों को छोड़ो अगर स्वयं को जानना है। क्योंकि शास्त्र की जानकारी होगी और जानकारी मन को परतंत्र करती है, बांधती है, विश्वास खड़े करती है। बिलीव्स पैदा होती है। कि हम मानने लगते हैं कि ईश्वर है या नहीं है। और यह मानना अगर बहुत गहरा हो जाए, तो जानने का कोई सवाल नहीं रह जाता। हम खुद खोज से, खुद की खोज की आकांक्षा बंद हो जाती है। उधार ज्ञान से हम तृप्त हो जाते है। जैसे कोई किसी दूसरे की आंखों को अपनी आंखें मान ले। और किसी दूसरे के पैरों को अपना पैर समझ लें। ऐसा हम दूसरों के ज्ञान को अपना ज्ञान समझ लेते है। और तब भ्रांति में जीवन नष्ट हो सकता है।

उनका जीवन भी नष्ट होता है। जिनकी जिज्ञासा नहीं जागती कि हम जीवन के सत्य को जाने। उनका जीवन भी नष्ट होता है, जिनकी जिज्ञासा जगती है। और जो लरनिंग की दिशा में चले जाते हैं। नोइंग की, ज्ञान की, दिशा में जाना बिलकुल दूसरी बात है। और ज्ञान की दिशा में जाने का मार्ग न तो शास्त्र है, न सिद्धांत है, न संप्रदाय है, बल्कि कुछ और है। वह क्या है उसके संबंध में थोड़ी सी बात मैं आपसे कहूं। और यह भी आपसे कहूं, जो व्यक्ति भी सीखने की दिशा को पकड़ लेगा। वह जाने-अनजाने जो काम करेगा वह भी आपके खयाल में होने चाहिए। तभी आपको यह भी खयाल में आ सकता है। कि ज्ञान के दिशा के व्यक्ति को क्या करना होगा।

जो व्यक्ति सीखने की दिशा में जाता है। उसका पहला काम होगा, वह अपने आचार को परिवर्तित करने में लग जाएगा। वह अपने आचरण को बदलने में लग जाएगा। क्योंकि जो बातें वह सुनेगा और सीखेगा, उनके अनुसार अपने को ढालने की, अपने को व्यवस्थित करने की कोशिश करेगा। यह स्वाभाविक है, अगर मैंने सीख लिया। मैंने जान लिया, कि महावीर को ज्ञान उपलब्ध हुआ, परम-ज्ञान उपलब्ध हुआ। तो मैं महावीर के आचरण जैसा आचरण अपना ढालने की कोशिश करूंगा। अगर महावीर नग्न रहते थे। तो मैं भी कपड़े छोड़कर नग्न रहने का अभ्यास करूंगा। और स्मरण रखें, महावीर की नग्नता में और मेरी अभ्यास जनक नग्नता में जमीन-आसमान का भेद होगा।

एक गांव में गया, एक मित्र है। पीछे संन्यासी हुए, उनसे मिलने गया। उनके झोपड़े के पास से पहुंचा, खिड़की में उसे मैंने देखा कि वे नंगे अंदर टहल रहे हैं। मुझे हैरानी हुई नग्न क्यों टहल रहे हैं। द्वार पर जाकर दस्तक दी, दरवाजा खोला तो वे चादर लपेटकर आए। मैंने उनसे पूछा कि खिड़की से मैंने देखा, आप नग्न थे। दूर गांव के बाहर रहते हैं। दरवाजा खोला तो आप चादर लपेटकर आए। वे बोले कि मैं नग्न होने का अभ्यास कर रहा हूं। बहुत जल्दी ही मुझे नग्न साधु हो जाना है। मैंने उनसे कहा—किसी सर्कस में भर्ती हो जाइए। संन्यास की क्या जरूरत है, नग्न होने का अभ्यास, उसका अभ्यास करने से तो कोई भी नग्न हो सकता है।

महावीर कोई नग्न होने के अभ्यास से थोड़े ही नग्न हुए होंगे। चित्त सरल हो गया, इतना निर्दोष, इतना इनोसेंट हो गया। कि स्मरण भी न रहा कि शरीर नग्न है या वस्त्र पर है। शरीर के वस्त्र इतनी निर्दोषता में गिर गए होंगे। तो यह नग्नता बहुत और बात है। और यह नग्नता की मैं वस्त्रों को छोड़कर नंगे होने का अभ्यास करूं। पहले अकेले में नग्न घूमूं, फिर जो मेरे बहुत प्रिय है, परिचित है उनके बीच नग्न रहूं। फिर गांव में जाऊं, फिर शहर में जाऊं, फिर बड़ी दुनिया में नग्न खड़ा हो जाऊं। तो यह अभ्यास जनक नग्नता और वह नग्नता जो कि एक आंतरिक निर्दोषता और सरलता से उत्पन्न हुई क्या यह दोनों एक सी बातें है। यद्यपि दोनों के शरीर नग्न होंगे। और दोनों ऊपर से देखने पर नग्न प्रतीत होंगे।

जो व्यक्ति भी सीखने की दशा में जाएगा। वह अनुकरण करना शुरू कर देता है। वह आचरण का अनुकरण करेगा। जो बाह्य आचरण है उसको देखेगा, उसके भांति अपने जीवन को ढालने की कोशिश करेगा। वह ढाल भी सकता है। लेकिन

अंततः उसे कोई उपलब्धि नहीं होगी। क्योंकि बाहर से अभिनय को थोपा जा सकता है। लेकिन बाहर से अंतस को जगाया नहीं जा सकता। एक आदमी नग्न हो सकता है। लेकिन इससे यह अर्थ नहीं है कि वह नग्न रहने की निर्दोषता को उपलब्ध हो गया। एक आदमी देख सकता है कि महावीर पैर फूंक-फूंक कर रखते हैं। एक कीड़ा भी न मर जाए। उसकी भी चिंता करते हैं। एक आदमी देख सकता है, बुद्ध की करुणा को, बुद्ध के प्रेम को, क्राइस्ट को या राम को या कृष्ण को। और उनके चारों तरफ देख सकता है। कि वे क्या करते हैं। और ठीक वैसा ही अभ्यास खुद भी कर सकता है।

अगर महावीर एक-एक पैर फूंक कर रखते हो तो उनके भीतर किसी प्रेम का उदय हुआ होगा। इसलिए किसी भी प्राणी को दुख न पहुंचे, इसका विचार है। लेकिन आप भी पैर फूंक-फूंक कर रख सकते हैं। और बिना किसी कीड़े को चोट पहुंचाए पैर रख सकते हैं। लेकिन इससे आपके भीतर प्रेम उत्पन्न हो गया। इसका कोई सबूत नहीं है। यह बिलकुल थोथा आचरण हो सकता है। और यह भी हो सकता है कि आप इतने निष्णार्थ हो जाए इसमें। कि अगर महावीर और आप दोनों परीक्षा में बैठे तो आप पास हो जाए। महावीर फेल हो जाएं। यह इसलिए कि अभिनय इतना कुशल हो सकता है कि वास्तविक से ज्यादा ठीक मालूम पड़े। ऐसा हुआ, पिछले महायुद्ध में, चीन में एक युवक, एक सैनिक अकैडैमी में अध्ययन कर रहा था। उस समय चीन का एक बहुत प्रसिद्ध सेनापति था। और उसने सोचा—कि मैं भी अध्ययन के बाद किसी दिन ऐसा ही सेनापति बन जाऊं। सेनापति की बड़ी प्रसिद्धि थी तो जो भी बच्चे सैनिक का शिक्षण ले रहे थे। सबके मन में आकांक्षा होनी स्वाभाविक थी कि वे वैसे सेनापति बन जाए। लेकिन दुर्भाग्य से वे सारी परीक्षाओं में तो प्रथम उत्तीर्ण हुआ और घुड़सवारी की परीक्षा में घोड़े पर से गिर पड़ा और उसकी टांग टूट गई। तो वह सेना में नहीं लिया जा सका। उसके दिल में एक पीड़ा रह गई। वह चीन छोड़कर बाद में अमरीका चला गया। भाग्य ने, संयोग ने, उसे फिल्म की दुनिया में पहुंचाया वह अभिनेता बन गया।

और पहले महायुद्ध के बाद—उस सेनापति के जीवन पर एक फिल्म बनी। उसमें उसने उस सेनापति का काम किया। तब वह सेनापति जिंदा था और अपने बूढ़े दिनों में अपने जीवन पर बनी हुई फिल्म को देखने गया। और उसने कहा—आश्चर्य है यह तो मुझसे भी ज्यादा निष्णार्थ है जो अभिनय कर रहा है। और उसने एक पत्र लिखा अभिनेता को कि अगर तुम और मैं दोनों जीवन में उतरें तो तुम जीत जाओगे, और मैं हार जाऊंगा। वह जो अभिनय है ज्यादा कुशल हो सकता है। क्योंकि बिलकुल व्यवस्थित गणित और यांत्रिक सुव्यवस्था उसमें लाई जा सकती है। जीवन उतना सुगम नहीं होता, जीवन अनगढ़ होता है, जीवन सपानटेनियस होता है। जीवन में सहज स्फूर्णा होती है। और अभिनय बंधा हुआ दायरा होता है, ढांचा होता है। मशीन जितनी कुशल हो सकती है। उतना मनुष्य कभी नहीं हो सकता है।

मनुष्य में चेतना है, मशीन में कोई चेतना नहीं है। इसलिए मशीन बिलकुल नियमित होती है, बिलकुल कुशल होती है मनुष्य नहीं होता। तो महावीर हार जाए, अगर उनका अनुयायी उनके सामने खड़ा हो जाए। क्योंकि वह सारी की सारी व्यवस्था बाहर से बिठा सकता है। जो भी लोग सीखने की दशा में जाते हैं वे बाहर से आरोपण करने लगते हैं। भीतर से जागरण नहीं और तब एक झूठी साधना पैदा होती है। जिसका कोई भी मूल्य नहीं है सिवाय इसके कि एक पाखंड पैदा हो। एक झूठ पैदा हो, एक मिथ्या आचरण पैदा हो। धर्म का पतन अनुकरण से हुआ है, बाह्य अनुकरण से और तब धर्म के नाम पर इतने लोग दिखाई पड़ते हैं। इतने संन्यासी, इतने साधु, इतने मंदिर, इतने पुरोहित, इतने पादरी, इतने प्रीचर, इतने उपदेशक, लेकिन दुनिया में धर्म की ज्योति करीब-करीब बुझ गई है। ये इतने लोग उस धर्म की ज्योति को जगाने में सहयोगी नहीं है, बल्कि उस ज्योति पर धुएं की भांति छा गए है। उसका दर्शन भी नहीं होने देते। और यह होगा, थोथा आचरण, ऊपर से थोपा जाता है।

वास्तविक आचरण अंतस से प्रकट होता है और निकलता है। झूठे फूल कागज के ऊपर से लगाए जाते हैं, असली फूल नीचे से आते हैं, जड़ों से निकलते हैं, पौधे पर खिलते हैं। असली फूल ऊपर से नहीं लगाए जा सकते। असली आचरण भी ऊपर से नहीं चिपकाया जा सकता। उसे भी भीतर से लाना होता है। लेकिन लरनिंग, सीखने की जो दृष्टि है। कि हम सीख लें, वह अनुकरणात्मक होती है। वह जो होती इमिटेटिव होती है। वह पीछे चलती है किसी के और उसके चारों तरफ देखती, उसने कैसा किया, वैसा मैं करूं।

कशता दुख और शांति

मैं आपको कहूं—जो भी अनुकरण करेगा। वह स्वयं के सत्य को भीतर कभी नहीं पा सकेगा। क्योंकि अनुकरण घातक है, अनुकरण नहीं, अंततः प्रवेश, किसी के पीछे जाना नहीं बल्कि अपने भीतर जाना है। धर्म का संबंध किसी के पीछे जाने से नहीं। बल्कि अपने भीतर जाने से है, और धर्म का मूल संबंध आचरण को बदलने से नहीं अंतस की क्रांति करने से है। यद्यपि यह सच है कि जब अंतस बदलता है तो आचरण अपने-आप बदल जाता है। आचरण अपने-आप बदलना चाहिए। तो ही इस बात का प्रमाण है कि भीतर अंतस में ट्रांस्फोरमेशन हो गया, वहां क्रांति हो गई। अंतस जब बदलता है, तो आचरण सूचना देता है। जैसे हम किसी घर के बाहर जाए, और हमें उस घर के भवन से खिड़कियों से अंधेरा मालूम पड़ें। अंधेरा दिखाई पड़े तो हम क्या समझेंगे। हम समझेंगे घर का दीया बुझा हुआ है। और घर में दीया जल जाए, तो उसके भवन के दरवाजों से, उसकी खिड़कियों से उसके झरोखों से रोशनी बाहर आने लगेगी। वैसे ही जब व्यक्ति के भीतर का अंतस जागता और जलता है। तो उसके जीवन के सारे झरोखों से जो रोशनी आने लगती है वहीं आचरण है।

लेकिन अगर कोई बाहर से आचरण को थोपे, तो भीतर तो अंधकार बना रहता है। और बाहर एक अभिनय पैदा हो जाता है। पर सीखने की बुद्धि यही कर सकती है। इसलिए मैं सीखने की बुद्धि के पक्ष में नहीं। जानने की बुद्धि के पक्ष में हूं। जानने की बुद्धि इस बात को अनिवार्य रूप से अनुभव करेगी। कि किसी का आचरण थोप लेना उचित नहीं है। हम दूसरों के वस्त्र पहनना पसंद नहीं करते। और न दूसरों के जूते पहनना पसंद करेंगे। लेकिन दूसरों का आचरण ओढ़ना हमेशा पसंद कर लेते हैं। यह गलत बात है। अगर दूसरों का वस्त्र पहनना अपमानजनक है। दूसरों के जूते पहनना अपमानजनक है। तो दूसरों का झूठा भोजन करना अपमानजनक है। तो इस सबसे बहुत गहरा अपमान इस बात में है। कि हम दूसरों के आचरण को ओढ़ें, अपने अंतस को जगाएं। कोई किसी का अनुकरण करने को पैदा नहीं हुआ। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की अनूठी कृति है, युनिक है, अद्वितीय है। क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति भी परमात्मा की अनूठी कृति है। और इसलिए पैदा नहीं हुआ कि वह किसी दूसरे का अनुकरण करें। बल्कि इसलिए पैदा हुआ है कि वह अपनी सारी संभावनाओं को विकसित करें। अपनी कली को फूल बनाए, अपने बीज को वृक्ष तक पहुंचाए। उसके भीतर पूरा जीवन खिलें और विकसित हो। इसलिए पैदा हुआ है लेकिन सारे हमारे चिंतन के ढंग, अनुकरण के ढंग है, इमिटेशन के ढंग है, फोलोइ□ग के ढंग है। इसको थोड़ा समझें, फोलोइ□ग, इमिटेशन, अनुकरण दूसरे के पीछे जाना और चीजों को थोपना। जैसा दूसरा करता हो, वैसा ही करना, यह हमारे मीडिया करमाइन के लक्षण है। यह हमारी जड़-बुद्धि के लक्षण है। यह लक्षण बहुत विवेक के नहीं है। यह बहुत विचार के नहीं है। दूसरा कैसा कर रहा है, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि मेरे भीतर क्या हो, और मैं ऊपर से थोप लूं चीजें यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि वह मेरे भीतर से विकसित हो और बाहर तक आए।

इसलिए आचरण में ही अंतस परिवर्तन करना होता है। जिसे जानना है सत्य को, उसे आचरण नहीं थोपना होता है बल्कि अंतःकरण बदलना होता है। अंतःकरण कैसे बदलेगा, शास्त्र से नहीं बदलेगा, मैंने कहा—अनुगमन से नहीं बदलेगा, आचरण से नहीं बदलेगा तो आप कहेंगे फिर बदलेगा कैसे? जगह-जगह लोग मुझसे पूछते हैं कि आपने यह सब तो निषेध कर दिया फिर बदलेगा कैसे? अंतःकरण कैसे बदलेगा? अंतःकरण निश्चित बदलेगा, अगर यह भूमिका खयाल में हो तो अंतःकरण बदला जा सकता है। और बदलने का कुछ उपाय है। बदलने का कोई मार्ग है, वहीं मार्ग वास्तविक धर्म है, वही मार्ग योग है, वही मार्ग ध्यान है। अंतःकरण बदला जा सकता है। पहली बात—अंतःकरण बदलने के लिए, अंतःकरण की शक्ति को अनुभव करना होगा। हमें खयाल भी नहीं है कि हमारे भीतर कोई अंतस चेतना जैसी चीज है। हम जीवन में इतने ज्यादा सलंग्न है, इतने ज्यादा तल्लीन, इतने डूबे हुए हैं। कि हमें फुरसत भी नहीं है इस बात की कि हम आंखें उठाए और उसकी तरफ देखें जो हमारे भीतर खड़ा है।

हम ऐसे लोग है जो खजाने पर खड़े हों और खजाने का खयाल भूल गए हैं। हम ऐसे लोग है, जो अपना ही नाम भूल गए है। एक अमरीका में वैज्ञानिक हुआ, एडीशन उसके बाबत बहुत-सी भुलक्कड़पन की, फोरगेटफुलनेस की, विस्मरण की घटनाएं हैं। लेकिन एक घटना बहुत अदभुत है, और बड़ी सूचक है। हमें हंसी आएगी, लेकिन हम सब भी उसी हालत में, पहले महायुद्ध में अमरीका में पहली दफा राशन हुआ। एडीशन गरीब आदमी था। यद्यपि बड़ा वैज्ञानिक था, लेकिन बड़ी दरिद्रता में और दुख में जीवन बिता रहा था। फिर बाद में उसकी ख्याति होनी शुरू हुई बड़े अविष्कार हुए बहुत

धन आया लेकिन तब वह गरीब हालत में था। एक नौकर भी उसके पास नहीं था। तो उसे खुद ही पहली दफा अपना राशन लेना एक दूकान पर जाना पड़ा। क्यू लगा के वह खड़ा हुआ। अपना कार्ड जमा कर दिया। जब उसका नंबर आया। और उस आदमी ने चिल्ला कर कहा—कि थामस एडिशन कौन है? आ जाए! तो वह आगे खड़ा रहा और सुनता रहा। उसने दुबारा कहा—महानुभावों थामस एडिशन कौन है? आ जाएं!

तब भी वह खड़ा रहा और सुनता रहा। बगल के आदमी ने कहा—कि मैं समझता हूं कि यह सज्जन जो सामने खड़े हैं यहीं थामस एडिशन है। वह एकदम चौंका और उसने कहा—कि क्या मेरा ही नाम थामस एडिशन है। क्षमा करें! मुझे जरा खयाल नहीं रहा। क्योंकि कोई बीस वर्षों से मेरे बच्चे जो हैं, विद्यार्थी जो हैं, वे मुझे...वे मेरा नाम लेते, मुझे लोग आदर करते हैं। मेरा किसी ने नाम नहीं लिया, मेरे सामने। मैं अपनी लेबोट्री में बैठा काम करता रहता हूं। मैं असल में भूल गया, क्षमा करें! मैंने कोई चिट्ठी नहीं लिखी, बीस साल से चिट्ठी लिखने की मेरी आदत नहीं है। दस्तक नहीं किया। यह पहला ही मौका है, कि मुझसे किसी ने पूछा, कि आपका नाम? तो मैं जरा घबड़ा गया। एकदम से मुझे खयाल नहीं आ सका। मुझे क्षमा कर दें। दूसरे लोगों ने बताया कि यही सज्जन एडिशन है। वे अपना कार्ड, अपना सामान लेकर वापस लौटा। उसने अपनी पत्नी से कहा—कि आज मैं बड़ी दिक्कत में पड़ गया। अपना नाम भूल गया। सारे अमरीका में उसकी हंसी हुई। लेकिन बहुत खयाल करिए। हम भी करीब-करीब अपना नाम भूलें हुए खड़े हैं।

हम भी एक क्यू में खड़े है जिंदगी की हमें कोई पता नहीं हमारा नाम क्या है? जिंदगी में इतने व्यस्त है फुर्सत किसको है कि हम जानें कि भीतर कोई चेतना भी खड़ी है। हम व्यस्त है, हम इतने व्यस्त है कि खुद को चूक गए है। हम इतने ज्यादा काम में लगे हैं कि उसे जानना मुश्किल हो गया है। जो हम है, तो थोड़ा-सा वह अंतस चेतना है हमारे भीतर इसका अनुभव करना होगा। इसका अनुभव कैसे होगा। जीवन के भीतर अनुभवों से, सजग गुजरने से इसका अनुभव होगा। हम सोए हुए गुजरते हैं, होशपूर्वक नहीं गुजरते। आप भोजन करते हों या कपड़े पहनते हों, या उठते हों, या चलते हों, या रास्ते पर जाते हों, या झगड़ा करते हों, या प्रेम करते हों। आप जो भी करते हैं सारी क्रियाएं करीब-करीब सोई हुई मूर्च्छित नींद में हो रही है। सुमिनाबलयुरन जिसको कहते हैं वो सारी दुनिया करीब-करीब सोई हुई चल रही है। हम करीब-करीब सोए हैं, हमें ठीक-ठीक होश भी नहीं है कि हम चल रहे हैं कि हम क्या कर रहे हैं। अगर मैं आपसे भी पूछूं कि क्या आप मुझे सुन रहे हैं। एकदम आपको खयाल आएगा कि भीतर तो बहुत कुछ और चल रहा है। मैं तो कहीं और हूं, अगर कोई आपसे रास्ते पर आप चले जा रहे हैं पकड़ लें और पूछें—कि क्या महानुभाव! आप इस वक्त चल रहे थे। आप कहेंगे क्षमा करें। चल तो जरूर रहा था लेकिन मैं कहीं और था।

अगर आप मंदिर में प्रार्थना कर रहे हैं। कोई आपको पकड़ लें और पूछें कि क्या सच में प्रार्थना कर रहे हैं। तो हो सकता है आप किसी जूते की दूकान पर जूते खरीद रहे हों। किसी सब्जी-बाजार में खड़े हों। या किसी दुश्मन की गर्दन पकड़ ली हों। या किसी अदालत में किसी पर मुकदमा चला रहे हैं। ना मालूम क्या कर रहे हों? और आपके हाथ प्रार्थना कर रहे होंगे। और मुंह जाप जप रहा होगा और हाथ में कंठी होगी और आपका मन कहीं और होगा। यह सोया हुआ पन यह एक बहुत गहरी निद्रा है। यह निद्रा हमें स्वयं की चेतना को नहीं जानने देती है। और अंतःकरण में प्रवेश नहीं करने देती। इस निद्रा को तोड़ने का सतत उपाय करना जरूरी है। जो भी हम करें, वह बहुत होशपूर्वक होना चाहिए। जो भी मैं करूं छोटा-सा-छोटा काम चाहें घर में बुहारी लगाते हो, या चर्खा कातते हो, या कपड़े धोते हों, या रोटी बनाते हो, या खाना खाते हो, या दूकान पर काम करते हो, जो भी हम कर रहे हैं। उसके प्रति परिपूर्ण होश होना चाहिए। और चित्त समग्र रूप से उस क्रिया में संलग्न होना चाहिए।

तो जैसे-जैसे चित्त क्रिया में संलग्न होगा। कर्म और ध्यान संयुक्त होंगे, वैसे-वैसे आपको अदभुत बोध होगा कि आपके भीतर एक बहुत चेतना की ज्योति है। लेकिन चेतना की ज्योति तभी जलेगी, तभी जगेगी। जब हम चैतन्य का प्रयोग करेंगे। हम मूर्च्छा का प्रयोग करेंगे तो चैतन्य कैसे जगेगा। मैं निरंतर जगह-जगह कहता हूं अगर हम यहां हम एक नीचे एक फीट चौड़ी और सौ फीट लंबी लकड़ी की पट्टी रख दें। और आप सारे लोगों से मैं कहूं कि इस पट्टी पर चलें तो आप करीब-करीब सभी लोग चल जाएंगे। बूढ़ा भी चल जाएगा, बच्चे भी चल जाएंगे, स्त्रियां भी चल जाएंगी। कोई भी गिरेगा

नहीं, एक फीट चौड़ी हो, सौ फीट लंबी हो। कोई गिरेगा नहीं सब चल जाएंगे। लेकिन अगर हम दो बड़े मकानों के ऊपर छत पर एक सौ फीट लंबी और एक फीट चौड़ी लकड़ी की पट्टी रख दें। और आपसे कहें आप चलें। तो फिर जवान भी डरेगा कि उस पर जाना कि नहीं जाना। और जाना तो उस पार पहुंचना मुश्किल है। क्यों?

जमीन पर भी पट्टी एक फीट चौड़ी थी, सौ फीट लंबी थी। छत पर भी पट्टी एक फीट चौड़ी, सौ फीट लंबी है। पट्टी उतनी है आप भी वहीं है दिक्कत क्या है। कठिनाई क्या है। कठिनाई यह है कि जमीन पर आप सोए हुए चल सकते थे। कोई डर नहीं था, वहां जाग कर चलना पड़ेगा। तो बचेंगे। जाग कर चलने की कोई आदत नहीं है, कोई खयाल नहीं है, सोए हुए चलने की आदत है तो जमीन पर चल लेंगे। कोई डर नहीं है क्योंकि गिरेंगे भी तो कहां जाएंगे। इसलिए आप बराबर चल जाएंगे। लेकिन वहां भय आपको सजग कर देगा और लगेगा कि अगर जरा ही नींद लगी तो नीचे चले जाएंगे। और नींद से चूकना तो मुश्किल है वह तो एक घड़ी नहीं छोड़ दे पीछा। तो आप कहेंगे कृपा करें इस पर मैं नहीं जाऊंगा। क्यों? पट्टी वहीं है, आप वही है। जाने में कठिनाई क्या है? कठिनाई है भीतर चलने वाली नींद। वह भीतर चूक जाना, पूरे वक्त चूकते चले जाना। हम भीतर कहीं और उपस्थित है। इसलिए जो भीतर है उसका अनुभव नहीं हो पाता। हम हमेशा कहीं और उपस्थित है हमारी प्रेजेन्स, हमारी मौजूदगी भीतर नहीं है। हमेशा कहीं और है।

कोई मंदिर का चिंतन कर रहा है। कोई दूकान का चिंतन कर रहा है। कोई संसार का चिंतन कर रहा है। कोई मोक्ष का चिंतन कर रहा है। लेकिन प्रेजेन्स कहीं और है। कहीं दूर है। वहां नहीं है जहां हम है जहां हम है। अगर वहीं हमारी चेतना की उपस्थिति हो तो आपको आत्मबोध होना शुरू हो जाएगा। और इसके लिए किसी शास्त्र में और किसी से पूछने जाने की बहुत जरूरत नहीं है। सबको जीवन मिला है, सबको चेतना मिली है। केवल जीवन और चेतना को जोड़ने की बात है।

जीवन भी पास है, चेतना भी पास है। जैसे किसी आदमी के पास तेल भी हो, बाती भी हो, माचिस भी हो, लेकिन न तेल को बाती से जोड़े न माचिस को बाती से जोड़े और बैठा रोता रहें कि बड़ा घना अंधकार है। मैं क्या करूं? हम उससे कहेंगे सब तेरे पास है लेकिन संयुक्त नहीं है वियुक्त है। तेरे पास दीया है, तेरे पास तेल है, तेरे पास बाती है, तेरे पास आग को भड़काने और जलाने का उपाय है। लेकिन तू उन सबको जोड़ नहीं रहा। प्रत्येक मनुष्य के पास उतना ही सामान, उतना ही साधन है। जितना महावीर के पास हो, बुद्ध के पास हो, कृष्ण के पास हो, क्राइस्ट को पास हो, या किसी और के पास। प्रत्येक मनुष्य को जीवन से परमात्मा से उतना ही मिला है। जितना किसी और को मिला है।

परमात्मा ने कोई कंजूसी या कोई पक्षपात नहीं किया हुआ है। सबके लिए बराबर मिला हुआ है। लेकिन आश्चर्य है कि कुछ के दीये जलते हैं और कुछ अंधेरे में बैठे रोते रह जाते हैं। उसका संयोग नहीं है, कर्म का और ध्यान का संयोग मनुष्य को आत्मा में ले जाता है। कर्म का और ध्यान का संयोग मनुष्य को भीतर ले जाता है। अंतस में ले जाता है। कर्म और ध्यान का वियोग मनुष्य को भटकाता है अंधेरे में और निद्रा में और जीवन में पीड़ा और दुख और चिंता के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। तो मैं आज की संध्या यह छोटी सी बात ही आपसे कहना चाहता हूं। बड़ी छोटी है जैसे अणु छोटा सा होता है। लेकिन अणु का विस्फोट घातक हुआ। इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा पैदा हुई कि मनुष्य चकित हो गया। इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा पैदा हुई कि हम चाहें तो पूरी पृथ्वी को नष्ट कर दें। एक छोटे से अणु में इतना राज छिपा था, हमें कभी पता नहीं था। ऐसी एक छोटी सी बात है। कर्म को और ध्यान को संयुक्त कर देना, बड़ी अटोमिक है। बड़ी छोटी है, लेकिन अगर इसका संयोग हो जाए तो विराट ऊर्जा पैदा होती। इसी छोटे से बिंदु में परमात्मा तक की उपलब्धि संभव है। जो हम करें वह बोधपूर्वक हो। जो हम करें वह ध्यानयुक्त हो। जो हम करें वह हमारी प्रेसेंस, हमारी मौजूदगी, हमारी उपस्थिति, पूरी-पूरी उसमें हो।

एक फकीर हुआ। नागार्जुन, एक गांव से निकलता था। अदभुत फकीर था, कुछ थोड़े से ऐसे अदभुत लोग हुए है। उनमें से एक था। नंगा ही रहता था। एक लकड़ी का भिक्षापात्र ही उसकी कुल संपत्ति थी। जिस गांव से निकला, उस गांव की सम्राज्ञी ने उसे बुलाया। और कहा—कि तुम जैसे अदभुत फकीर के हाथ में लकड़ी का यह भिक्षापात्र शोभा नहीं देता। मैंने एक भिक्षापात्र बनाया सोने का उसमें बहुत बहुमूल्य जवाहरात है। वह तुम्हें मैं भेंट करती हूं। इतनी कृपा करो इंकार मत करना। नागार्जुन ने कहा—करूंगा। जैसा लकड़ी वैसा सोना। हमें भीख मांगने से मतलब रोटी खाने से मतलब। कोई

साधारण संन्यासी होता वह कहता क्षमा करें। हम सोने छू सकते हैं, सोना और हम छुएंगे। आंख फेर लेता भागता वहां से कि सोना कहीं पकड़ न लें। लेकिन जो जानता है उसे सोना और मिट्टी में भेद नहीं। जो नहीं जानता वह सोने से भागता है या सोने के लिए भागता है। यह दोनों अज्ञानियों के दो दल है।

एक सोना पाने के लिए भागता है। एक सोने से घबड़ा कर भागता है। अज्ञानियों के दो दल है, लेकिन जो जानता है, उसे सोने से भागना नहीं है। सोने के लिए भी भागना नहीं। उसने तो अगर तुझे इससे सुख मिलता है, तो ठीक है। यही ठीक है हमें तो रोटी खानी है। हम इसमें ही मांग के खा लेंगे। वह लेकर चला, लेकिन चलते वक्त उसने रानी को कहा—कि देख, लेकिन इसमें एक खतरा है।

लकड़ी का था तो कोई चुराता नहीं था, इसको कोई न कोई ले जाएगा। थोड़ी देर में हम बिना पात्र के हो जाएंगे। तो इतना खयाल रखना मेरा पात्र फेंक मत देना। कल मैं उसको मांग लूंगा। रानी ने कहा—कि इतनी जल्दी। उसने कहा—बहुत मुश्किल है। यह पात्र मेरे पास बचे। वह वहां से निकला। लेकिन गांव में एक नंगा आदमी एक सोने का चमकता हुआ पात्र उसमें जवाहरात जड़े हुए है। तो सबकी आंखें गई। गांव का जो बड़ा चोर था। वह पीछे हो लिया। नागार्जुन ने बार-बार उसके पैर की आवाज सुनी। उसने कहा—कि ठीक है। जिसको चाहिए वह आ गया। वह गांव के बाहर एक खंडहर में ठहरा हुआ था। वहां न कोई द्वार थे, न खिड़की थे, न कोई दरवाजा था। वह अंदर गया, दोपहर का वक्त था। वह भोजन करके दोपहर को सो जाएगा। उसने सोचा—कि वह आदमी तो आ ही गया है। वह बाहर आकर दीवाल के पीछे छिपकर बैठ गया।

और उसने सोचा—इसे व्यर्थ बाहर बिठाए रखूं। दोपहरी है, मैं तो भीतर बैठा हूं वह धूप में बैठा हुआ है। फिर थोड़ी बहुत देर में ले ही जाएगा। तो इतनी देर बिठालने का पाप मैं क्यों मोल लूं। और फिर जिसे ले ही जाना है। उसे दे देना उचित है। कम-से-कम दान का तो मजा रहेगा। और उसको भी चोरी का कष्ट न होगा। उसने पात्र को उठाया खिड़की के बाहर फेंक दिया। वहां पात्र गिरा तो चोर हैरान हो गया। पहले ही हैरान था कि नंगा फकीर और हाथ में लाखों की कीमत की चीज लिए हो। अब और हैरान हुआ, कि इस पागल ने फेंक क्यों दिया। उसे कुछ बड़ा हैरानी हुई। अभी तक तो सोच रहा था कि इसको पा जाऊंगा। तो बहुत कुछ मिल जाएगी, बहुत उपलब्धि हो जाएगी। अब ऐसा लगा कि एक आदमी ने जब इसे फेंक दिया। इसको मैंने पा भी लिया तो कौन सी उपलब्धि हुई। जब ऐसे लोग भी जमीन पर है। जो इसे फेंक सकते हैं, और मैंने पा भी लिया तो कौन सी उपलब्धि। जरूर इससे भी ऊपर कोई उपलब्धि की चीजें होनी चाहिए। नहीं तो इसको फेंकने वाले लोग नहीं हो सकते।

उसने कहा—कि मैं जरा भीतर उसने खिड़की से खड़े होकर कहा—कि भिक्षु! मैं धन्यवाद करता हूं। मैं आया था चोरी करने तुमने भेंट कर दिया। क्या इतनी आज्ञा और दोगे। कि मैं भीतर आऊं और पांच क्षण तुम्हारे पास बैठ जाऊं। नागार्जुन ने कहा—मित्र! इसीलिए पात्र बाहर फेंका कि तू भीतर आ सके। तू भीतर तो आता, लेकिन चोर की तरह आता। तो तेरा चित्त भीतर न आ पाता। तेरा चित्त बाहर रहता। घबराया हुआ आता, चित्त तेरा बाहर ही जाने का रहता। लेता और भागता, अब तू आएगा तू निश्चिंत आ सकता है। तुम भीतर आ जाओ। वह चोर भीतर आया। यह आदमी अदभुत था। हैरानी का था वह बैठा।

उसने पूछा—कि कई बार मेरे मन में भी होता है कि ऐसी संततः, ऐसी शांति, ऐसा आनंद, ऐसा अदभुत अपरिग्रह मुझे भी कभी उपलब्ध हो। लेकिन मैं हूं चोर, और इस नगर में बड़े-सा बड़ा चोर। और सभी साधु मुझे जानते हैं क्योंकि चोरों और साधुओं का गहरा संबंध है। वह एक-दूसरे के दुश्मन है। तो सभी साधु मुझे जानते हैं जब भी मैं उनके पास जाता हूं। तो वे मुझे पहला उपदेश यही देते हैं कि तू चोरी छोड़ तब फिर कुछ हो सकता है। यह मुझसे छूटती नहीं इसीलिए बात वहीं रुक जाती है। आप कुछ अदभुत मालूम पड़ते हैं। क्या आपसे मैं पूछूं कि क्या मेरे जीवन में भी कोई क्रांति हो सकती है। क्या मैं भी कभी उस दशा को पा सकता हूं। जो आपको है, नागार्जुन ने कहा—पहली तो बात तू यह समझ लें। कि अब तक तू किसी साधु के पास नहीं गया। क्योंकि साधु को चोरी से क्या मतलब? वह क्यों कहेगा, कि चोरी छोड़।

साधु को चोरी से मतलब ही नहीं है। मैं तुझसे नहीं कहूंगा कि चोरी छोड़, क्योंकि मैं जानता हूं कि जैसा तेरा अंतःकरण है, वैसा तेरा आचरण है। आचरण में चोरी है तो अंतःकरण में भूल है। सवाल आचरण का नहीं है। सवाल अंतःकरण का है। अंतःकरण ठीक होगा, आचरण बदलेगा। मैं तुझसे नहीं कहता कि चोरी छोड़ तू चोरी खूब कर। मैं तुझसे सिर्फ एक बात कहता हूं। चोरी तू होशपूर्वक कर। अजीब शिक्षा थी, नागार्जुन ने उससे कहा—कि तू चोरी होशपूर्वक कर। जैसे ही मूर्च्छा आए, तू चोरी मत करना। होशपूर्वक करना, अगर तू किसी का दरवाजा तोड़ें, तो बहुत सजग होकर तोड़ना और तेरा चित्त वहीं रहे, तेरा ध्यान वहीं रहें। कि मैं दरवाजा तोड़ रहा हूं। जब तू भीतर जाए, और तिजोरी खोलें तो तेरा ध्यान पूरा का पूरा तिजोरी तोड़ने में रहे। और जब तू रुपए निकाले तो तेरा ध्यान पूरा का पूरा रुपए निकालने में रहे। बस इतना तू करना। इससे तुझे चोरी में बड़ी कुशलता भी आ जाएगी। बड़ा ठीक से तू चोरी कर सकेगा। तेरा साहस भी बढ़ेगा। और सब अच्छा होगा तू जा! उस चोर ने पैर छुए, उसने कहा कि ऐसा उपदेश मुझे कभी मिला नहीं। तो बड़ी अजीब बात आप कह रहे हैं। चोरी में कुशलता मेरी बढ़ाने के लिए उपाय बता रहे हैं। इससे क्या होगा।

उसने कहा—तू कभी कुछ हो। तो मेरे पास आना। वह दस दिन बाद आया। उसने पैर नागार्जुन के पकड़े और उसने कहा—कि आपने मुझे धोखा दे दिया। जैसे ही मैं चोरी करने जाता हूं और होश से जाता हूं। तो मेरे पैर आगे नहीं बढ़ते। होश से जाता हूं तो पैर आगे नहीं बढ़ते। और कल तो मैं एक भवन में घुस गया। निश्चित मूर्च्छा में घुस गया। फिर मुझे एकदम खयाल आया कि मैं तो होश में नहीं हूं। तो मैं तिजोड़ी के सामने खड़ा था। तिजोड़ी मैंने खोल ली थी। संपत्ति बहुत मेरे हाथ में थी। इतनी कभी मेरे सामने नहीं थी। सारा घर सोया था, लेकिन मैं जागा हुआ था। यह मुश्किल हो गई। सारा घर सोया हुआ था। संपत्ति मेरे सामने थी लेकिन मैं जागा हुआ था यह मुश्किल हो गई। संपत्ति छोड़कर वापस लौट आया। तब मैंने जाना कि दूसरों के सोने से चोरी नहीं हो रही है। मेरे सोने से चोरी हो रही है। और चोरी गई। क्योंकि जागकर मैंने अपने भीतर वह संपदा पा ली। जो सोकर मैंने बाहर बहुत खोज और मुझे नहीं मिल सकी। एक भीतर एक ज्योति का एक चैतन्य का अनुभव हुआ। तो मैं कहूं कुछ और जीवन में बहुत करने जैसा नहीं है। करने जैसा है, कर्म में ध्यान को संयुक्त। जो भी हम कर रहे हैं, जो भी, चाहे कोई जूते सी रहा हो। चाहे कोई चोरी कर रहा हो। चाहे कोई कुछ भी कर रहा हो। इससे कोई प्रयोजन नहीं कि कौन क्या कर रहा है।

जो भी हम कर रहे हैं, वह परिपूर्ण ध्यान से इंटीग्रेटेड हो, वह पूरा संयुक्त हो। ध्यान से संयुक्त होकर सब कर्म, प्रार्थना बन जाते हैं। सब कर्म पवित्र हो जाते है। जो अपवित्र है वह होना बंद हो जाएगा। जो पवित्र है वह शेष रह जाएगा और क्रांति यह होगी। कि भीतर इस ध्यान पूर्वक कर्म के प्रवेश से उसको बोध होगा जो चेतना है। वह जो आत्मा है, उसका बोध, उसका बोध का बिंदु उपलब्ध हो जाएगा। तो सब उपलब्ध हो जाता है। सारे धर्मों ने जो कहा—सारे ज्ञाताओं ने जो कहा, सारे संतों ने साधुओं ने जो कहा—सारे तीथ□करों ने, ईश्वरपुत्रों ने, अवतारों ने जो कहा। वह उस एक बिंदु के उपलब्ध होने से उपलब्ध हो जाता है।

परिधि को बदलने की बात नहीं, केंद्र को जागने और जीतने की बात है। और जो उसे जीतता और जानता है, वह इस जीवन में जो भी जानने जैसा है और जो भी जीतने जैसा है। वह उसे जीत लेता है और जान लेता है। धन्यता उसे उपलब्ध होती है, आनंद और शांति उसे उपलब्ध होते हैं। उसे ज्ञात होता है कि मैं अमृत हूं, क्योंकि वह जो चैतन्य की शिखा है। उसकी कोई मृत्यु नहीं, और उसे ज्ञात होता है कि मैं देह से पृथक और अलग हूं। और उसे ज्ञात होता है कि कोई बंधन मेरे ऊपर नहीं। मैं परम स्वतंत्र हूं। और उसे ज्ञात होता है कि कोई कलियां मेरे ऊपर नहीं है, मैं परम-मोक्ष हूं। जो उस एक बिंदु को जानता है। वह परमात्मा के सारे रहस्य को और राज्य को जान लेता है।

वह बिंदु प्रत्येक के भीतर है। और वह ज्योति सबके भीतर है। लेकिन कुछ, कुछ ज्योति को तेल को जोड़ने की, दीए को, जलाने की बात है। यह जल सकता है। मैंने यह थोड़ी सी बातें आपसे कहीं। यह अधिकार है हमारा। हम इसे जलाए, यह अपमान होगा हमारा कि हम इसे बिना जलाए मर जाएं। मरने के पहले, अगर कोई व्यक्ति परमात्मा से संयुक्त नहीं होता तो उसमें जीवन के बहुमूल्य अवसर को बिलकुल व्यर्थ खो दिया है। बिलकुल मिट्टी में खो दिया है। उसने मिट्टी के सिक्के गिनें और खराब कर लिया जीवन को। जबकि सोने के सिक्के पाए जा सकते थे। जबकि पाए जा सकते थे वे सिक्के जो कि

वास्तविक संपदा के है। और जिनके आधार पर ही हम वस्तुतः खड़े हो सकते हैं। और अनुभव कर सकते हैं कि जीवन क्या है। और तब एक धन्यता मालूम होती है, कृतार्थता मालूम होती है। एक संगीत से, प्रार्थना से, एक पवित्रता से, एक शांति से, एक निर्दोषता से, चित्त भर जाता है। और तब हम संयुक्त होते हैं, समस्त से जो स्वयं को जानता है। वह समस्त संयुक्त हो जाता है। जो आत्मा से परिचित होता है, वह परमात्मा से इकट्ठा जोड़ जाता है। तब बूंद सागर से, एक हो जाती है। और कभी कुछ, तभी कुछ अर्थ है। और तभी कुछ जीवन का उपयोग है। उस उपयोग के लिए प्रार्थना करता हूं। उस उपयोग के लिए प्यास जगें। इसलिए परमात्मा से आकांक्षा करता हूं।

ईश्वर आपके दीये को जलाए। आपके अंतःकरण को ज्योतिपूर्ण करें। क्या आपका आचरण भी क्रांतिपूर्ण हो जाए। यह कामना करता हूं। मेरी बातों को इतने प्रेम से और शांति से सुना है। बहुत सी ऐसी बातों को जिन्हें शांति से सुनना कठिन है। जिन्हें प्रेम से सुनना मुश्किल हो गया। उनको भी प्रेम और शांति से सुना है। उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मेरे प्रिय आत्मन्

मैं अत्यंत आनंदित हूं कि जीवन के संबंध में थोड़ी सी बातें आपसे कर सकूंगा। मनुष्य के जीवन में बहुत पीड़ा, बहुत कष्ट है। ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है, जो ठीक से जी रहा हो। ऐसा मनुष्य भी खोजना कठिन है, जो जीवन में आनंद का और धन्यता का अनुभव कर रहा हो। यदि हम अपने से पूछें या अपने पड़ोसी से पूछें तो यह ज्ञात करना कठिन होगा कि किसी ने जीवन को इस भांति अनुभव किया हो कि वह फिर से उसी जीवन को पाने के लिए उत्सुक हो जाए। ऐसा कष्ट, ऐसी पीड़ा स्वाभाविक है कि जीवन को एक उदासी से, निराशा से, और अंधेरे से भर दें। बहुत कम लोगों की आंखों में प्रकाश मालूम होता है। बहुत कम लोगों की आंखों में ज्योति मालूम होती है। बहुत कम लोगों के ह्रदय में संगीत मालूम होता है।

और तब, तब यह स्वाभाविक ही है, कि हम एक बोझ की भांति अपने जीवन को ढोते हों। और यह स्वाभाविक ही है कि हम जीवन के रस से वंचित रह जाएं। और जिसे हम जीवन समझें वह केवल मृत्यु का, एक लंबी मृत्यु का दूसरा नाम हो। मेरे देखने में हम धीरे-धीरे मरते जाते हैं। और कोई भी विचार करेगा, तो यह अनुभव करेगा कि जन्म और मृत्यु के बीच, जिससे हम परिचित होते हैं, वह जीवन नहीं बल्कि क्रमिक मृत्यु है, धीमी मृत्यु है। रोज हम मृत्यु की ओर विकसित होते चले जाते हैं। और हम चाहे कोई भी प्रयास करते हों, चाहे हम धन इकट्ठा करते हों या यश अर्जित करते हों, या बहुत ज्ञान इकट्ठा कर लेते हों या त्याग और तपश्चर्या करते हों, लेकिन अंततः ऐसे बहुत कम धन्यभागी हैं जो जीवन के सत्य को अनुभव कर पाते हों। अधिक लोग केवल मृत्यु के मुंह में पहुंच जाते हैं। हमारी सारी यात्राएं चाहे वे कितनी ही भिन्न दिशाओं में हों, अंततः मृत्यु की दिशा में ले जाने वाली सिद्ध हो जाती हैं।

मैं एक छोटी सी कहानी आपसे कहूं। उससे शायद मेरी बात समझ में पड़ सके। दमिश्क में एक बादशाह हुआ। बहुत बड़ा बादशाह था, बहुत संपत्ति थी, बहुत बड़ा साम्राज्य था। एक दिन सुबह ही उसने स्वप्न देखा, भोर के समय, कि मौत उसके सामने खड़ी है। और मौत ने उससे कहा, कि आज सांझ को तुम ठीक जगह मुझे मिल जाना। मैं तुम्हें लेने आ रही हूं। मौत ने उस स्वप्न में उस बादशाह को कहा—आज ठीक जगह सांझ को मिल जाना। आ जाना ठीक जगह, मैं तुम्हें लेने आ रही हूं। नींद उसकी खुली। उसने नगर के विचारशील लोगों को बुलाया और पूछा कि ऐसा मैंने स्वप्न देखा है। क्या इसका अर्थ है? विचारकों ने कहा कि इसका अर्थ है कि आज सांझ आपकी मृत्यु आ जाएगी।

राजा ने कहा, फिर मैं क्या करूं? कुछ लोगों ने कहा कि इस महल को छोड़कर आप भाग जाएं; जितने दूर जा सकें उतने दूर निकल जाएं। राजा के पास बड़ी तेज चाल से चलने वाला घोड़ा था। उस घोड़े पर सवार होकर वह राजा भागा। सांझ तक वह सैकड़ों मील दूर निकल गया। सूरज डूबने के समय एक बगीचे में जाकर उसने शरण ली। निश्िंचतता से यह सोचकर कि अब मृत्यु का कोई भय नहीं है। मैं काफी दूर निकल आया हूं। लेकिन वह घोड़ा बांध भी नहीं पाया था, मुंह फेरा और देखा, मौत सामने खड़ी है। तो राजा ने कहा, यह तो बड़ा धोखा दिया। मैं तो इतनी यात्रा किया दिनभर में, तुमसे ही भागने को। मौत ने कहा कि यही जगह तो हमारा-तुम्हारा मिलने का निश्चय था। तुमने इतनी यात्रा हमसे मिलने को की।

कि यही ठीक स्थान है, यही ठीक समय है। इसी के लिए सुबह मैंने तुम्हें निमंत्रण दिया था, कि ठीक जगह, ठीक समय पर सांझ को मिल जाना। तुम ठीक जगह आ गए हो।

उस राजा ने सोचा कि मैं भाग रहा हूं मृत्यु से। लेकिन अंततः पाया कि वह मृत्यु में पहुंच गया है। हम सारे लोग भी भागते हैं। शायद इस कल्पना में कि मृत्यु से बच जाएंगे और जीवन को अनुभव करेंगे। लेकिन अंततः पाते हैं कि मृत्यु के मुंह में पहुंच गए हैं। और जीवन से वंचित रह जाते हैं। जीवन को अनुभव करना जीवन का उद्देश्य है। कोई पूछे कि जीवन का लक्ष्य क्या है? तो मैं कहूंगा, जीवन को उसके परिपूर्णता में अनुभव कर लेना। लेकिन बहुत कम लोग अनुभव कर पाएंगे। क्योंकि हमारी दिशाएं, हमारे प्रयत्न, हमारी चेष्टाएं, हमारी यात्रा, करीब-करीब जीवन के दिशा में नहीं है। हम मृत्यु की दिशा में ही चलते हैं। मृत्यु की दिशा में चलने से मेरा क्या प्रयोजन है, वह मैं आपको कहूं। मृत्यु की दिशा में चलने का अर्थ है हम उन चीजों को इकट्ठा करें, उन चीजों को संग्रह करें, उन शक्तियों को खोजें और उनकी साधना करें, जिन्हें मृत्यु नष्ट कर देने वाली हो।

हम जो भी इकट्ठा करेंगे, जो भी संग्रह करेंगे या जो भी शक्ति उत्पादित करेंगे, यदि मृत्यु उसे छीन लेने को है, तो हमारी सारी यात्रा व्यर्थ हो जाएगी। और अंततः हम पाएंगे कि हाथ हमारे खाली हैं और हमारी कोई उपलब्धि नहीं है। हम जीवन में शरीर के लिए जो भी खोजते हैं, इकट्ठा करते हैं, वह शरीर के साथ ही समाप्त हो जाएगा। यह हमने बहुत बार सुना है, यह हमारे धर्मग्रंथों ने, हमारे साधुओं ने, हमारे विचारशील लोगों ने बार-बार कहा है कि शरीर के लिए हम जो भी इकट्ठा करेंगे वह शरीर के साथ ही छिन जाने वाला है। लेकिन फिर भी शरीर के अतिरिक्त और किसके लिए हम खोजें, किसके लिए प्रयास करें, उसका भी हमें दर्शन नहीं हो पाता। इसलिए यह बात केवल विचार होकर मन में रह जाती है। लेकिन जीवन में कोई क्रांति नहीं बन पाती। कोई आंदोलन हमारे हृदय में पैदा नहीं हो पाता। यह आंदोलन न पैदा होने का कोई कारण है। उस कारण के संबंध में भी आपसे मैं बात करूं। और कैसे हम उस आंदोलन से गुजर कर एक आमूल परिवर्तन से स्वयं के सत्य को और जीवन के अर्थ को अनुभव कर सकते हैं। उस संबंध में भी बात करना चाहूंगा।

हम सारे लोग कष्ट को तो अनुभव कर पाते हैं, लेकिन दुख को अनुभव नहीं कर पाते। साधारणतः हम कष्ट को और दुख को एक ही बात समझ लेते हैं। लेकिन कष्ट और दुख बड़ी अलग-अलग बातें हैं। कष्ट के अनुभव का अर्थ है किसी अभाव का अनुभव, भोजन न हो, वस्त्र न हो, बीमारी हो या और कोई बात हो। तो जीवन में कष्ट का अनुभव होता है। लेकिन कष्ट का अनुभव, दुख का अनुभव नहीं है। कष्ट का अनुभव होगा, तो हम सुख की खोज करेंगे। उस कष्ट को मिटाने की चेष्टा करेंगे। और अधिकतम लोग कष्ट के अनुभव के कारण सुख की खोज करते हैं, धन की खोज करते हैं, यश की खोज करते हैं। यह कष्ट के अनुभव की उत्प्रेरणाएं जिनसे हम सुख की खोज में जाते हैं। जिन लोगों को दुख का अनुभव होगा वह सुख का नहीं, बल्कि सत्य का अनुसंधान करेंगे। जिन लोगों को दुख का अनुभव होगा, वे लोग सुख का नहीं बल्कि आनंद का अनुसंधान करेंगे। और सुख और आनंद के अनुसंधान में दिशा का बुनियादी भेद है।

महावीर को या बुद्ध को, कष्ट का कोई अनुभव नहीं था। सब उनके पास था, जो भी सुख हो सकते थे उनके पास थे। इसलिए कष्ट की तो कोई प्रतीति नहीं हो सकती थी। फिर भी कोई बहुत गहरे दुख का उन्हें बोध हुआ। जब तक गहरे दुख का बोध न हो तब तक जीवन की खोज बहुत गहरे में प्रवेश नहीं कर पाती। और हम सारे लोग अधिकतर कष्ट को ही अनुभव करके समाप्त हो जाते हैं, दुख को अनुभव नहीं कर पाते। कष्ट का संबंध शरीर से होता है। दुख का संबंध आत्मा से होता है। जब कोई गहरी पीड़ा अनुभव हो। और ऐसा प्रतीत हो कि जिस जीवन को मैं जी रहा हूं, उसमें कोई भी अर्थ नहीं है, कोई मीनिंग नहीं है। उसमें कोई सार्थकता नहीं है। रोज सुबह उठ आने में, रोज सांझ सो जाने में या कुछ संपत्ति इकट्ठी कर लेने में या कोई बड़ा मकान बना लेने में। आज सांझ को हम आपके गांव के खंडहर देखने गए। तो वहां मैंने कहा कि इन खंडहरों को देखने के बाद अगर यह खयाल न उठता हो कि हम जिन मकानों को बना रहे हैं वे भी खंडहर हो जाएंगे, तो इन खंडहरों को देखना हमारा सार्थक नहीं हुआ। मुझे कहा कि हजारों वर्ष पुराने खंडहर हैं। बड़े सुंदर हैं। बहुत मेहनत उन लोगों ने उन्हें बनाने के लिए की होगी। और जिन्होंने उन्हें बनाया होगा, अपने जीवन की पूरी शक्ति उनमें लगा दी होगी। अपने जीवन की पूरी शक्ति को लगाकर उन्होंने उन भवनों को, उन पत्थरों को खोदा होगा और बनाया होगा। लेकिन आज

हम उन्हें जमीन से निकालकर विचार करते हों, वे कितने पुराने हैं। जिन लोगों ने उन्हें बनाया, वे लोग उन्हें बनाने में नष्ट हो गए होंगे। जिन लोगों ने उन्हें निर्मित किया, वे उन्हें निर्मित करने में ही जीवन को अपने समाप्त कर लिए होंगे। लेकिन हम भी वैसे ही मकान बनाएंगे। हम भी वैसी ही सभ्यता खड़ी करेंगे। हम भी बहुत कुछ वैसा ही करेंगे जो नष्ट हो जाने को है। और उसके साथ, उसके प्रयास में, उसको बनाने में हम भी नष्ट हो जाएंगे। जीवन को अनुभव करने के लिए जरूरी है, कि यह बोध हमारे भीतर हो, यह विचार हमारे भीतर सजग हो, कि सामान्यतः जिसे हम जीवन की तरह जीते हैं उसका कोई अंततोगत्वा, आत्यंतिक रूप से कोई अर्थ हो सकता है? कोई उपलब्धि हो सकती है? वह कहीं पहुंचाएगा या नहीं पहुंचाएगा?

सारे सुख मिल जाएं, सारी व्यवस्था मिल जाए, तो भी मेरे भीतर कोई संगीत उत्पन्न होगा या नहीं होगा? मुझे कोई ऐसी कृतार्थता अनुभव होगी या नहीं कि मैं कहीं पहुंच गया और मैंने कुछ पा लिया? और अगर मृत्यु भी मेरे द्वार पर खड़ी हो जाए तो भी मेरे भीतर एक संपदा होगी। जो मृत्यु भी छीन नहीं सकेगी। जब तक ऐसी संपदा का अनुभव न हो जिसे मृत्यु भी छीनने में असमर्थ है तब तक जानना चाहिए कि हमने जीवन व्यर्थ खोया, हमने जीवन के भीतर से कोई सार, कोई अनुभव, कोई उपलब्धि हम प्राप्त नहीं कर सके।

सिकंदर यहां भारत आया। और जब वह यहां से, भारत से वापस लौटता था तो उसे एक बात याद आई। जब वह यूनान से हिंदुस्तान की तरफ यात्रा पर आया था तो कुछ मित्रों ने उसे कहा था कि भारत से एक संन्यासी को लेते आना। भारत से जाते समय बहुत सी संपत्ति लूटकर वह ले जा रहा था। उसने सोचा एक संन्यासी भी ले चलें। यूनान में लोग देखना चाहेंगे और प्रसन्न होंगे देखकर। संन्यासी शायद पूरब के मुल्कों को छोड़ और कहीं होता नहीं। तो सिकंदर ने आस-पास अपने सिपाही भेजे और पुछवाया कि कोई संन्यासी हो तो मुझे खबर की जाए। गांव के बाहर तीस वर्षों से एक वृद्ध संन्यासी नदी के किनारे निवास करता था। लोगों ने कहा, वहां एक संन्यासी है, लेकिन उसे ले जाना कठिन है। सिकंदर ने कहा, जिस आदमी को कुछ भी कठिन न रहा हो और जिसने कभी किसी चीज को असंभव न माना हो, उसके लिए एक फकीर को ले जाना कठिन है, यह कैसी बात है! उसने अपने सिपाही भेजे और उस संन्यासी से कहलवाया कि सिपाहियों के पीछे आ जाओ वरना ठीक नहीं होगा। सिपाहियों ने जाकर संन्यासी को कहा कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ यूनान चलें। वह संन्यासी हंसने लगा और उसने कहा कि मैं जिस दिन संन्यासी हुआ उसी दिन मैंने अपने सिवाय और सबकी आज्ञाएं मानना बंद कर दिया।

सिपाहियों ने कहा, ये नंगी तलवारें देखते हैं! इसका एक ही परिणाम हो सकता है कि आपकी हत्या कर दी जाए। उस संन्यासी ने कहा, अब मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो हत्या से छिन सकेगा। और जो मेरे पास है, उसे कोई मृत्यु मुझसे छीनने में असमर्थ है। तो तुम जाओ और सिकंदर को कहो कि अब तक तुम जिन पहाड़ों के सामने खड़े हुए होओगे उनको पार किया जा सकता था। आज एक ऐसे आदमी के सामने खड़े हो, जिसे मारकर कुछ भी नहीं छीना जा सकता। और जिसको मार कर कोई संपत्ति जिसकी नुकसान नहीं पहुंचाई जा सकती। कोई ऐसी संपदा भी है जो तलवार से नष्ट नहीं होती।

सिकंदर खुद उससे मिलने गया। और उसने कहा कि यह बातचीत मत करो। ज्ञान की बातचीत का मेरे सामने कोई अर्थ नहीं है। हम तो एक ही तलवार की भाषा जानते हैं। या तो राजी हो जाओ, या मरने को राजी हो जाओ। उस संन्यासी ने कहा, बेहतर है कि आप अपनी तलवार उठा लें। और जो आप करना चाहते हैं करें। जिस भांति आप देखेंगे कि आपने मुझे मारा, उसी भांति मैं भी देखूंगा कि मुझे मारा गया। उस संन्यासी ने कहा, जिस भांति आप देखेंगे कि शरीर से सिर अलग हो गया, उसी भांति मैं भी देखूंगा कि शरीर से सिर अलग हो गया। क्योंकि मैं शरीर से पृथक और अलग हूं।

सिकंदर अपनी तलवार को वापस रख लिया और लौट गया। और बाद में उसने अपने मित्रों को कहा, फकीरों को लाया जा सकता था। बहुत से लाए जा सकते थे। लेकिन जो सच में संन्यासी था उसे लाना कठिन था। क्योंकि उसे भय दिलाना कठिन था।

जो मनुष्य भयभीत है, जानना चाहिए उसे अभी जीवन का कोई पता नहीं चला, क्योंकि जिसे जीवन का पता चलेगा अनिवार्यरूपेण उसके भीतर भय विलीन हो जाएगा। वह अभय को, फिअरलेसनेस को उपलब्ध होगा। जो आदमी भयभीत

है उसने अभी केवल अपने शरीर को जाना है। और शरीर की मृत्यु निश्चित है। इसलिए भीतर भय अनिवार्य है। जब तक हम यह अनुभव करेंगे कि हम शरीर हैं, और यह अनुभव करेंगे कि शरीर की मृत्यु है, तब तक बहुत स्वाभाविक है कि भीतर एक भय चौबीस घंटे, जाने-अनजाने हमारे भीतर उपस्थित रहे। और वह भय यदि बना रहे तो उसके परिणाम में चिंता होगी, पीड़ा होगी, बेचैनी होगी, मानसिक तनाव होगा और किसी तरह की शांति और किसी तरह का संगीत संभव नहीं रह जाएगा। यही कारण है कि जमीन पर अरबों लोग हैं, लेकिन शांति को और संगीत को उपलब्ध लोग खोजने कठिन हो गए हैं। उनके भीतर एक भय है, हम सारे लोगों के भीतर एक भय है। अगर हम भीतर झाकेंगे तो हमें ज्ञात होगा हम सब भयभीत हैं और सब कंप रहे हैं।

कीर्कगार्ड ने एक किताब लिखी है और किताब का नाम रखा है, ट्रेम्बलिंग, किताब का नाम रखा है—कंपना और घबड़ाना। और उसमें लिखा है कि हर आदमी अगर अपने भीतर झांक कर देखेगा तो कंप रहा है और घबरा रहा है। और इसी वजह से हम अपने भीतर देखना पसंद भी नहीं करते। हम पसंद करते हैं बाहर उलझे रहें। कोई आदमी दुकान में उलझा रहे। कोई आदमी किसी और काम में उलझा रहे। कोई आदमी मंदिर में उलझा रहे। कोई आदमी धन कमाने में उलझा रहे। कोई आदमी यश कमाने में उलझा रहे। लेकिन हम बाहर उलझे रहें, कहीं भीतर, कहीं भीतर के कंपते हुए मनुष्य का, घबड़ाई हुई चेतना का हमें पता न चल जाए। इसलिए हम एकांत से भी डरते हैं। अकेले में हम नहीं रहना चाहेंगे।

अभी मैं एक जगह ठहरा, एक पहाड़ी पर एक बिलकुल अकेली जगह थी। मैंने उस गांव के लोगों से कहा कि कौन-कौन इस पहाड़ी पर अकेले में ठहरने को राजी होगा? वे बोले, अकेले हम नहीं ठहर सकते। दस-बीस लोग यहां हों तो हम यहां ठहर सकते हैं। मैंने उनसे पूछा, अकेले में ठहरने में भय क्या है? अगर बहुत गहरे में देखें तो अकेले में होने में डर है। क्योंकि अकेले में अपना सामना हो जाएगा। हम अपने को देख लेंगे, या अपने से कोई परिचय हो जाएगा। अपने से परिचित होने में हम डरते हैं, क्योंकि भीतर सिवाय कंपन और भय और चिंता और बेचैनी के कुछ भी नहीं है। भीतर एक रुग्ण मनुष्य है। भीतर एक बीमार चेतना है। उस बीमार चेतना से बचने के लिए हम बाहर भागे रहते हैं। जैसे कोई बीमार आदमी वस्त्रों में अपने शरीर को छिपा ले। जैसे कोई कोढ़ से भरा हुआ आदमी सुंदर वस्त्रों में अपने कोढ़ के धब्बों को छिपा ले। और भूल जाए कि वह कोढ़ी है।

वैसी स्थिति हम सारे लोगों की है। हम सारे लोग भीतर भयभीत, अत्यंत चिंता से भरे हुए, अत्यंत कंपते हुए, घबराए हुए लोग हैं। और इस घबराहट को, इस चिंता को बचाने के लिए बाहर की दुनिया में अपने को खोए रखने के कोई न कोई उपाय खोज लेते हैं। यह स्थिति हमारे भीतर मृत्यु की जो सन्निकट संभावना है उसके कारण पैदा होती है। और हर आदमी जन्म के बाद बहुत गहरे में जानता है कि मरना होगा। रोज चारों तरफ मृत्यु घटित हो रही है। रोज सूखे हुए पत्ते कुम्हलाकर गिर रहे हैं। रोज सूखे हुए फूल अलग किए जा रहे हैं। और रोज सब परिवर्तित होता जा रहा है। जो भी जन्मता है वह मर जाता है। इसे हम जानते हैं, इसे हम रोज प्रत्यक्ष कर रहे हैं। हम भीतर सत्य से परिचित हैं भली-भांति कि हमें मरना होगा।

उस मृत्यु को भुलाए रखने के लिए हम बहुत उपाय करते हैं। लेकिन मृत्यु को भूला तो जा सकता है, लेकिन बचा नहीं जा सकता। मृत्यु को भूले रह सकते हैं, लेकिन बचना असंभव है। इसलिए उचित है, जो जानते हैं, जो समझते हैं, जो विचार करते हैं, वे मृत्यु से बचना बंद कर देते हैं। उसका साक्षात करते हैं। और यह बड़े आश्चर्य की बात है, जो व्यक्ति मृत्यु का साक्षात करने के लिए तत्पर हो जाता है वह जीवन के साक्षात को उपलब्ध हो जाता है।

यह बड़ी विरोधी बात दिखाई पड़ेगी। लेकिन जो आदमी जीवित होने के लिए बहुत उत्सुक है और जीवन को बहुत जोर से पकड़ता है, वह आदमी जीवन को खो देता है। और उसके अंतिम परिणाम में मृत्यु के सिवाय उसके हाथ में कुछ भी नहीं आता। और जो आदमी इस सत्य को अनुभव करके कि मृत्यु निश्चित है—और स्मरण रखें, मृत्यु के अतिरिक्त और सब अनिश्चित है। और स्मरण रखें कि एक ही तथ्य निश्चित है और वह मृत्यु है। आज तक इस जमीन पर मनुष्य के लंबे इतिहास में या पूरे प्रकृति के जीवों के इतिहास में मृत्यु के अतिरिक्त और कोई भी तथ्य सुनिश्चित नहीं है। उस सुनिश्चित तथ्य को जो इंकार करता है, भुलाना चाहता है, उससे पलायन करना चाहता है, उसको हटा देना चाहता है, आंखों से

ओझल कर देना चाहता है। वह मनुष्य भूल में है, वह मनुष्य बहुत गहरी भूल में है। और उसके जीवन में जो संभव हो सकता था। जो क्रांति, जो अनुभव, जो साक्षात, उससे वंचित रह जाएगा। किसी सुनिश्चित तथ्य को पकड़ना होगा। क्योंकि जो सुनिश्चित है उसी को पकड़ कर हम सच्चे आधार पर पैर रख सकते हैं। स्मरण रखें, जो अनिश्चित है उसको पकड़ने वाला भूल में होगा। जो निश्चित है, जो उसे ही पकड़ लेता है। वही ठीक-ठीक आधार पर पैर रखता है।

इसलिए जो लोग मृत्यु से बचने की चेष्टा में लगे रहते हैं, वे अनिश्चित को पकड़ते रहते हैं। वे हवाओं को पकड़ते रहते हैं, मुट्ठियां बांधते रहते हैं। और सोचते हैं कि उनकी मुट्ठियों में कुछ बंद हो जाएगा। आखिर में वे पाएंगे मुट्ठियां खाली हैं और जीवन का अवसर व्यतीत हो गया। लेकिन जो सुनिश्चित को पकड़ता है—और एक ही सरटेंटी है, एक ही सत्य है जो बिलकुल निश्चित है, वह मेरी मृत्यु है या आपकी मृत्यु है जो—इस सत्य को ही पकड़ लेता है और इसी पर अपने पैर रखता है और इसी में प्रवेश करता है, वह मनुष्य सत्य के साक्षात को उपलब्ध हो जाता है। सत्य के साक्षात के लिए सुनिश्चित तथ्य से यात्रा करनी आवश्यक है।

अनिश्चित तथ्यों से जो यात्रा करेगा, वह सत्य पर नहीं पहुंच सकता। अगर हम सत्य के प्रति कभी उत्सुक भी होते हैं तो जाकर मंदिर में प्रार्थना करते हैं। भगवान की पूजा करते हैं, भगवान के किसी रूप की आराधना करते हैं, कोई शास्त्र पढ़ते हैं, किसी शास्त्र को कंठस्थ करते हैं, किसी परमात्मा के नाम का स्मरण करते हैं और माला फेरते हैं, या कुछ और उपाय करते हैं। लेकिन ये सारे उपाय अगर हम मन में बहुत गहरे खोजेंगे, अनिश्चित उपाय हैं। निश्चित उपाय तो एक है कि हम अपनी मृत्यु के तथ्य को स्वीकार करें, जानें, पहचानें और उसमें प्रवेश करें।

धर्म मृत्यु में प्रवेश का विज्ञान है। और यह आश्चर्य कि जैसा मैंने बात आपसे कहीं जो मृत्यु के इस विज्ञान में प्रविष्ट होता है वह जीवन को उपलब्ध हो जाता है। क्राइस्ट का एक बहुत अदभुत वचन हैः जो जीवन को खोजेगा वह खो देगा, और जो जीवन को खोने को राजी हो जाता है वह जीवन को पा लेता है। बूंद जब अपने को सागर में खो देती है तो पूरे सागर को पा लेती है। और बूंद अगर अपने को बचाने के प्रयास में लग जाए तो सिवाय इसके कि धूप उसे सुखा दे और उड़ा दे और कोई उपाय नहीं है।

हम अपने पर विचार करें तो दो ही तरह के लोग हम अपने भीतर पाएंगे। एक तो वे लोग हैं जो भीतर के भय को, चिंता को, घबड़ाहट को दबा कर चुपचाप किसी भांति भुलाकर बाहर की दुनिया में अपने मन को तल्लीन रखकर इस दुनिया को सोए हुए गुजर जाना चाहते हैं, एक मूर्च्छा में इस दुनिया से गुजर जाना चाहते हैं। आंख खोलकर देखने में उन्हें डर है दूसरे वे लोग हैं, जो चाहे तथ्य कितने ही घबड़ाने वाले क्यों न हों और चाहे जीवन की सच्चाइयां कितनी ही बेचैन करने वाली क्यों न हों और चाहे कितने ही साहस की और दुस्साहस की जरूरत क्यों न पड़ जाए, लेकिन जो तथ्य है उसे देखना चाहते हैं, उससे परिचित होना चाहते हैं, उसके भीतर आंख डालना चाहते हैं और उसके भीतर प्रवेश करना चाहते हैं।

उन लोगों को मैं धार्मिक लोग कहता हूं, उन आत्माओं को मैं धर्म की तरफ उत्सुक आत्माएं कहता हूं, जो जीवन की सच्चाइयों को जैसी वे हैं, वैसी ही उनको देखने के लिए उत्सुक होते हैं। निश्चित ही इसके लिए बड़े साहस की जरूरत है। क्योंकि अपने भीतर के भय को अनुभव करने के लिए और अपने भय के भीतर प्रवेश करने के लिए और अपने भीतर के भय को जीतने के लिए बड़े साहस की, बड़े दुस्साहस की जरूरत है। इसलिए कोई यह न सोचे कि धर्म कोई बूढ़े और गुजरे हुए लोगों का काम है। धर्म है उन सबका काम, जिनके भीतर थोड़ी भी ऊर्जा है, थोड़ी भी शक्ति है, थोड़ा भी साहस है और जिन्हें थोड़ी भी इच्छा है कि वे परीक्षा करें अपने जीवन की और जानने की आकांक्षा करें।

धर्म उनके लिए है जिनके भीतर जिज्ञासा है, जिनके भीतर इनक्वायरी है। जो खोजना चाहते हैं, और जो मात्र जीने से संतुष्ट नहीं हैं। जो मात्र जीने से संतुष्ट है वह पशु के तल से ऊपर नहीं उठा। लेकिन जो जीवन को जानना भी चाहता है और बिना जाने जीवन को जीने से इंकार कर देगा। जो इस बात के बाबत सुनिश्चित होना चाहता है कि मैं क्यों हूं, मेरे होने का क्या अर्थ है, मेरे होने की क्या जरूरत है, मेरे होने का क्या प्रयोजन है। जो इस सत्य को खोजना चाहता है—और ऐसा कोई भी मन नहीं है जो किसी न किसी रूप में इस सत्य को न खोजना चाहता हो। क्योंकि बिना इस सत्य को खोजे हुए कोई सुनिश्चित नहीं हो सकता, कोई शांत नहीं हो सकता, कोई आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता। हम सारे लोग ही, चाहे

दिशाएं हमारी गलत हों, किसी सुनिश्चित भूमि को खोजने के लिए लगे हुए हैं। चाहे कोई धन खोज रहा हो, चाहे कोई और कुछ खोज रहा हो, लेकिन हमारी खोज बहुत गहरे में इसी बात के लिए है कि हम कोई ऐसी चीज पा लें जो हमसे छीनी न जा सके। हम कोई ऐसा आधार पा लें जो हमारे पैर के नीचे से हटाया न जा सके, हम कोई ऐसी सुनिश्चित भूमिका पर खड़े हो जाएं जो नष्ट न हो सके। हम किसी न किसी रूप में कोई अमृत बिंदु पाना चाहते हैं और मृत्यु के ऊपर उठना चाहते हैं। लेकिन हम जो भी उपाय करेंगे वे उपाय ऐसे हैं कि मृत्यु उन्हें झूठा कर देती है। मृत्यु उन्हें नष्ट कर देती है।

लाहौर के पास नानक एक गांव में गए। उनकी कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर है। वे एक गांव में ठहरे। उस गांव में जो सबसे बड़ा धनपति था, उसने आकर नानक के पैर छुए और नानक से कहा कि मेरे पास बहुत धन है, बहुत धन है, मेरा कोई पुत्र नहीं, मैं इस सारे धन को धर्म के काम में लगा देना चाहता हूं। नानक ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उसने कहा, पहली तो बात तुम यही समझ लो कि धन का और धर्म का कोई संबंध नहीं है। तुम्हें अगर यह खयाल है कि तुम्हारे पास बहुत धन है, तो पहली तो यही अयोग्यता हो गई तुम्हारे धर्म को जानने की। और फिर जैसा मैं तुम्हें देखता हूं, मुझे लगता है तुम बिलकुल निर्धन आदमी हो, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने कहा, मेरे कपड़ों पर न जाएं, मैं सीधा-सादा आदमी हूं, लेकिन धन मेरे पास बहुत है। आप आज्ञा दें तो मैं दिखाऊं कि मेरे पास क्या है।

नानक ने कहा, अब तुम जो मानते नहीं, तुम्हें एक छोटा सा काम तुम्हें देता हूं। इसे तुम कर लेना, फिर कोई बड़ा काम होगा तो मैं जरूर बताऊंगा। अगर यह काम हो गया तो बड़ा काम भी बताऊंगा, क्योंकि मुझे साबित हो जाएगा तुम्हारे पास शक्ति है, संपत्ति है। और नानक ने एक कपड़ा सीने की छोटी सी सूई निकालकर उस आदमी को दी। और कहा, इसे संभाल कर रख लो। और जब हम दोनों मर जाएं तो इसे वापस कर देना। वह आदमी बहुत हैरान हुआ होगा, नानक ने भी कैसी पागल बात कही। कैसे पागलपन की बात कही, मरने के बाद सूई को कैसे वापस किया जा सकेगा। माना कि सूई बहुत छोटी चीज है। मान लिया कि इससे और छोटी चीज खोजनी कठिन है। लेकिन मौत के पार इसको ले जाना असंभव है। पर वहां और भी लोग थे, और उन सबके सामने नानक से कुछ कहना ठीक न समझ कर वह आदमी वापस लौट गया।

रात उसने मित्र इकट्ठे किए, उनसे पूछा—उनसे कहा कि मैं अपनी पूरी संपत्ति लगाने को राजी हूं। कोई रास्ता हो कि मैं सूई को पार ले जा सकूं। ताकि नानक के सामने यह सिद्ध हो जाए कि मेरे पास संपत्ति थी, मेरे पास शक्ति थी। मित्रों ने कहा, और सब हो जाए तुम्हारी संपत्ति से, इस सूई को मृत्यु के पार ले जाना कठिन है। कुछ भी नहीं ले जाया जा सकता। मौत सब छीन लेगी। असल में मुट्ठी कैसी भी बांधी जाए, मुट्ठी इस पार रह जाएगी और मौत सब छीन लेगी। दूसरे दिन सुबह चार बजे, जबकि कोई भी नहीं था, नानक के पास जाकर उस आदमी ने सूई वापस कर दी। और कहा कि मुझे क्षमा करें। मेरी संपत्ति की यह सामर्थ्य नहीं है। तो नानक ने कहा, फिर तुम्हारी संपत्ति किस मूल्य की है? और क्या उसका अर्थ है?

जिस चीज को मृत्यु छीन लेगी, तुम उसी से मृत्यु से बचने की कोशिश में लगे हो तो भूल में हो। जिस चीज को मृत्यु छीन लेती है, उसी से हम मृत्यु के विरोध में अगर किला बना रहे हों तो हम पागल हैं। और जो मृत्यु नष्ट कर देगी, उसके ही द्वारा हम अपने भीतर सुनिश्चित होना चाहते हों। और एक आधार खोजना चाहते हों, अमृत आधार खोजना चाहते हों तो हम गलती में हैं।

नानक ने कहा, संपदा वही है जिसे मृत्यु जलाने में असमर्थ हो। जो मृत्यु की लपटों से बच जाए वही केवल संपत्ति है। और निश्चित ही वही संपत्ति है जो छीनी न जा सके। जो छीनी जा सके, वह संपत्ति नहीं है। क्योंकि तब आप संपत्तिशाली नहीं हैं, केवल संपत्ति के आवरण में छिपे हुए दरिद्र भिखारी हैं। संपत्ति के वस्त्र हैं और भीतर भिखारी खड़ा हुआ है। और आज इसी वक्त आप भिखारी किए जा सकते हैं, संपत्ति छीनी जा सकती है। और मृत्यु तो निश्चित भिखारी कर देगी। और यह भी स्मरण रखें कि जो आदमी जितनी ज्यादा संपत्ति इकट्ठी करता जाता है, उतना ही उसका भिखमंगापन बढ़ता चला जाता है, और उसकी मांग बढ़ती चली जाती है, और उसका इकट्ठा करने का खयाल बढ़ता चला जाता है। पांच हों तो दस चाहिए, दस हों तो हजार चाहिए, हजार हों तो और कुछ चाहिए। उसकी भिक्षा का कोई अंत नहीं है, उसकी भीख का कोई अंत नहीं है।

कशता दुख और शांति

एक हिंदू संन्यासी अमरीका में था। और हमेशा अपने को बादशाह कहता था। जब भी कोई पूछता तो अपने को हमेशा बादशाह कहता। अमरीका का प्रेसीडेंट उन्नीस सौ बीस में उससे मिलने आया। अमरीका के प्रेसीडेंट ने उससे कहा कि यह कैसी बात है कि तुम अपने को बादशाह कहते हो। तुम्हारे पास लंगोटी के सिवाय और कुछ भी नहीं है। तो उस संन्यासी ने कहा कि इसलिए अपने को बादशाह कहता हूं क्योंकि मेरी कोई मांग नहीं है, मैं भिखारी नहीं हूं। मेरी इस दुनिया से कोई भी मांग नहीं है। और मैं उन लोगों को भिखारी कहूंगा, जिनकी इस दुनिया से बहुत मांग है।

और जिसकी जितनी बड़ी मांग है वह उतना बड़ा भिखारी है। संपत्ति को हम कितना ही खोजें, हमारा भिखमंगापन मिटता नहीं है। केवल ढंक जाता है, संपत्ति के वस्त्रों में, यश के वस्त्रों में, बड़े पद के वस्त्रों में, बड़ी महत्वाकांक्षाओं में हम भूल जाते हैं कि हम भिखारी हैं। लेकिन भिखारी भीतर जिंदा रहता है। जरा ही हम अपने वस्त्रों को फाड़ कर देखें, हम पाएंगे भीतर भिखारी मौजूद है, कंप रहा है, घबरा रहा है। उसके पास कोई संपदा नहीं है। वह बिलकुल निर्धन है। इसलिए यह देखने में आया, मनुष्य के अनुभव में आया कि ऐसे संपदाशाली हमने देखे जिनके पास कुछ भी नहीं था, और ऐसे भिखमंगे देखे जिनके पास सब कुछ था।

बुद्ध एक गांव में गए। उस गांव के राजा ने अपने वजीरों से सलाह ली कि बुद्ध आते हैं तो मैं उनका स्वागत करने गांव के बाहर जाऊं या न जाऊं? उनके एक वजीर ने कहा, आपका जाना शोभायुक्त नहीं है। एक भिखमंगा गांव में आता हो और एक बादशाह उसका स्वागत करने जाए यह बात कुछ ठीक नहीं है। यह बात उस दरबार का जो पहरेदार था—एक बूढ़ा पहरेदार था, गरीब आदमी—वह यह बात सुनकर हंसने लगा। तो उस राजा ने उससे पूछा कि तुम हंसे क्यों? यह बात अशोभन थी, शिष्टाचार के विरोध में थी कि एक दरबान हंस दे, राज दरबार की बात सुनकर। उस बूढ़े आदमी ने कहा, मुझे हंसी आ गई। मुझे हंसी इसलिए आ गई कि जो आ रहा है, उसके पास बहुत संपत्ति है। और आप जो सोच रहे हैं कि मैं राजा हूं, मैं कैसे उसके स्वागत को जाऊं! आप भ्रांति में हैं और गलती में हैं। अगर मुझसे पूछते हैं तो धनवान वह है और निर्धन आप हैं। और उचित है कि आप जाएं और उस दिखने वाले निर्धन का स्वागत करें जो कि वस्तुतः धनवान है।

राजा ने पूछा, ऐसा तुमने किस हिम्मत से कहा? तो उस बूढ़े आदमी ने कहा कि जो तुम्हारे पास है उससे बहुत ज्यादा उनके पास था। लेकिन वह उनको व्यर्थ दिखाई पड़ा। वह उन्हें व्यर्थ दिखाई पड़ा। उसमें उन्हें संपदा नहीं मालूम हुई। संपदा कहीं और दिखाई पड़ी। उसकी वे खोज में गए। और उसको पाकर लौट रहे हैं। अब उनकी खोज समाप्त हो गई है। अब उन्हें पाने को कुछ भी शेष नहीं रह गया।

संपत्ति केवल वही है, जिसे पाने के बाद फिर पाने को कुछ शेष न रह जाए। और जो संपत्ति पाने से और संपत्ति की आकांक्षा बढ़े, वह संपत्ति नहीं है विपत्ति है। जिससे और भिखमंगापन बढ़ता चला जाए, वह कोई उपलब्धि नहीं है, वह कोई पाना नहीं है, वह कोई प्राप्ति नहीं है। प्राप्ति वह है जिसे पा लेने पर फिर और पाने का प्रश्न न रह जाए।

अगर मुझे प्यास लगे और मैं पानी पीऊं और पानी पीने से और प्यास बढ़ती चली जाए, तो उस पानी को हम पानी कहेंगे या कि उसे और प्यास को बढ़ाने वाली बीमारी कहेंगे! पानी तो वही है जिसे मैं पीऊं और मेरी प्यास बुझ जाए।

क्राइस्ट एक गांव से गए, उन्हें प्यास लगी। उन्होंने कुएं पर पानी भरती एक स्त्री से कहा कि मुझे पानी पिला दो। उस स्त्री ने उन्हें देखा। वे दूसरे गांव के थे, दूसरी जाति के थे। उसने कहा क्षमा करें, हम दूसरे गांव के, दूसरी जाति के लोगों को पानी नहीं पिलाया करते। तब क्राइस्ट हंसने लगे और उन्होंने कहा कि पागल! तू जो पानी पिलाएगी, उस पानी को पी लेने के बाद फिर प्यास लग आती है। लेकिन एक पानी हम भी पिलाते हैं, जिसको पिलाने के बाद फिर कोई प्यास नहीं लगती। तो तेरे बहुत सस्ते पानी के बदले में हम उस पानी की बात भी तुझे बता देंगे। उसके मार्ग, उसकी चर्चा भी करेंगे, जिसको पी लेने के बाद फिर कोई प्यास नहीं लगती।

ऐसा पानी है जिसे पीने के बाद फिर प्यास नहीं लगती। और ऐसी संपदा है जिसे पाने के बाद फिर और संपदा पाने का खयाल नहीं रह जाता। और एक ऐसा जीवन है जिसे पाने के बाद मृत्यु का भय विलीन हो जाता है। उसको पाने का मार्ग धर्म है। तो धर्म से मेरा अर्थ कोई जैन, हिंदू, मुसलमान, ईसाई से नहीं है। धर्म से मेरा अर्थ है जीवन के सत्य को पाने का मार्ग।

कशता दुख और शांति

एक दौड़ है जो हमें बाहर ले जाती है। वह कभी भी हमें उस तक नहीं पहुंचा पाती, उस संपदा तक जिसकी मैं बात कर रहा हूं। लेकिन एक और गति भी है, अपने भीतर जाने की गति भी है। और अगर हम अपने भीतर जा सकें, इस क्षण भी अगर हम आंख बंद करें और अनुभव करें, तो हममें से शायद ही कोई यह कह सके कि मैं शरीर हूं। ऐसा आदमी आज तक नहीं पैदा हुआ जिसने सच में आंख बंद की हो और भीतर देखा हो और अनुभव किया हो और जो यह कह दे कि मैं शरीर हूं। रात आप गहरी नींद में सो जाते हैं। शरीर का तो पता भी नहीं रहता। आप तो होते हैं, लेकिन शरीर का कोई पता नहीं रह जाता। जब बहुत गहरी नींद होती है, तो आपको अपने नाम का भी पता नहीं रह जाता। आपको यह भी पता नहीं रह जाता है कि आप धनवान हैं, कि निर्धन हैं, कि ज्ञानी हैं, कि अज्ञानी हैं, कि संन्यासी हैं, कि गृहस्थ हैं, आप कौन हैं इसका भी पता नहीं रह जाता। आप तो होते हैं, लेकिन ये सारी बातें ऊपर छूट जाती हैं। आप किसी भीतर के केंद्र पर पहुंच जाते हैं। जहां इनकी कोई भी खबर नहीं। अगर आपको बेहोश कर दिया जाए और आपके हाथ-पैर काट डाले जाएं तो आपको उनका भी पता नहीं चलता। आप होते हैं, लेकिन उनका कोई पता नहीं चलता। मनुष्य का होना, उसके शरीर के होने से भिन्न है। मनुष्य की सत्ता, जीवन की सत्ता, उसकी देह की सत्ता से बहुत भिन्न और बहुत ऊपर और बहुत पृथक बात है।

यदि हम भीतर चलें, और भीतर हम तभी चल सकते हैं जब हमें यह एक भ्रम हमारा टूट जाए कि बाहर कुछ पाने जैसा है। जिस आदमी का यह भ्रम कायम है कि मैं बाहर कुछ पा लूंगा—इसको मैं संपत्ति का भ्रम कहता हूं, चाहे वह संपत्ति किसी रूप की हो—जिस आदमी को यह भ्रम कायम है कि बाहर मैं कुछ पा लूंगा, वह भीतर की यात्रा नहीं कर सकता। यह भ्रम टूटना चाहिए। और यह भ्रम टूट सकता है। अगर हम आंख खोलें और चारों तरफ जीवन को देखें तो यह भ्रम टूट सकता है। यह टूटेगा, अगर हमारी आंख खुली हो। और यदि हमारा यह भ्रम टूट जाए—और यह सबसे बड़ी घटना है, सबसे सौभाग्य की, कि किसी आदमी का यह भ्रम टूट जाए कि बाहर कुछ भी पाया जा सकता है जो कि सुनिश्चित आधार बन सके। चारों तरफ आप देख रहे हैं, बाहर का सब पाना छूट जाता है। मनुष्य रिक्त, नष्ट हो जाता है। यह अगर आपके मन में गहरा प्रविष्ट हो जाए, तो बाहर की दौड़ एक नया रूप, एक नई दिशा ले लेती है। और वह दौड़ और दिशा यह होती है कि मैं अपने भीतर खोजूं। यदि बाहर कोई भी उपाय नहीं है सत्य को, सच्चाई को, वास्तविक को, सुनिश्चित को, अमृत को या अनंत को पाने का, तो मैं भीतर झांकूं। दो ही तो दिशाएं हैं, एक तो बाहर का जगत है और एक भीतर का जगत है। बाहर का भ्रम टूट जाए, तो भीतर की यात्रा शुरू होती है।

याज्ञवल्य एक ऋषि हुआ। छोड़कर जा रहा था घर को। बहुत धन उसने इकट्ठा किया था, बहुत बड़ा विवादी था, बहुत बड़ा पंडित था। बहुत बड़े-बड़े विवाद उसने जीते, बहुत बड़े-बड़े पुरस्कार जीते और उसने अपने आश्रम में बहुत सोने के अंबार लगा दिए। विवाद में उसकी अदभुत कुशलता थी, पांडित्य उसका बड़ा था। जहां भी गया, वहीं से विजयी होकर लौटा। लेकिन जीवन के अंत में उसे पता चला कि इस विजय के धोखे में बहुत बड़ी हार हो गई। एक विवाद से लौट रहा था, तब उसे ज्ञात हुआ। एक बहुत बड़े राजा ने एक बहुत बड़ा विवाद आयोजित किया था। और कहा था कि जो पंडित वहां इकट्ठे पंडितों के सारे प्रश्नों के उत्तर दे देगा, उसे एक हजार गऊएं, जिनके सींगों पर स्वर्ण मढ़ा था और जिनके ऊपर वस्त्र डाले गए थे जिनमें हीरे-मोती लटकाए गए थे, वे उसे भेंट में मिल जाएंगे।

वे एक हजार गऊएं उस राजा ने द्वार पर खड़ी कर रखीं थी राजमहल के, लाखों रुपये उन गऊओं पर लटका दिए गए थे। और हजारों पंडित पूरे देश से इकट्ठे हुए थे। उन पंडितों के बीच किसी की हिम्मत भी न थी, कि खड़ा हो और कहे कि मैं दावा करता हूं, विवाद में, प्रतियोगी होने में। याज्ञवल्य सबसे पीछे पहुंचा, उसके साथ उसका एक शिष्य था। उसने द्वार पर जाकर कहा, देखो गऊएं धूप में खड़े-खड़े थक गई हैं। पहले तुम इन्हें घर ले जाओ। विवाद हम बाद में कर लेंगे। उसने कहा, पहले तुम इन्हें घर ले जाओ, पुरस्कार पहले ले जाओ, विवाद हम बाद में कर लेंगे। ऐसा आश्वस्त था! और उसका शिष्य गऊएं खदेड़ कर घर ले गया। और सारे पंडित देखते खड़े रह गए। उनकी हिम्मत न हो रही थी कि कौन प्रतियोगी हो। और यह आदमी पीछे आया, उसने गऊएं पहले भेज दीं। और उसने राजा से कहा, चिंता न करें, विवाद हम बाद में जीत लेते हैं। विवाद जीतकर वह घर लौटा।

लेकिन घर लौटकर उसे एक अदभुत कुछ बात खयाल में आई। उसे लगा कि कितना ही मैं विवाद जीत लूं, सत्य का तो मुझे पता नहीं। विवाद तो मैं जीत आया, लेकिन सत्य का मुझे पता नहीं। और धन तो मैंने बहुत बटोर लिया, लेकिन उस धन की मुझे आज तक कोई सुगंध भी नहीं मिली जो मुझसे छीना न जा सके। घर पहुंचते-पहुंचते वह उदास हो गया। उसकी पत्नी ने पूछा—उसकी दो पत्नियां थी। उन्होंने पूछा कि इतने उदास क्यों हो? उसने कहा, उदासी का कारण है, जीवन चूका जा रहा है। और मैं व्यर्थ विवाद जीतने में उसे नष्ट कर रहा हूं और सत्य का मुझे कोई पता नहीं। और जीवन रिक्त होता जा रहा है और मैं धन बटोर रहा हूं। और वास्तविक धन का मुझे कोई पता नहीं है। मौत द्वार पर आई जाती है और अभी मेरे हाथ खाली हैं। तो आज मैं जाता हूं उसकी खोज में जो कि वास्तविक है, उसकी तलाश में जो कि सत्य है, उसके अनुसंधान में जो कि वास्तविक संपदा है। उसने अपनी सारी संपत्ति को दोनों पत्नियों में बांट दिया।

पहली पत्नी ने वह संपत्ति स्वीकार कर ली, वह बहुत प्रसन्न हुई, बहुत संपदा थी। लेकिन दूसरी पत्नी ने कहा, तुम देते हो इसी कारण संपदा मेरे लिए व्यर्थ हो गई।

उसने पूछा, क्यों? उसने कहा कि जब तुम इसे छोड़कर जा रहे हो, तो मुझे समझ में आ गया कि इसमें कुछ पाने जैसा नहीं है। तुम्हारे पास यह संपदा थी और अगर इससे कुछ मिल सकता तो तुम्हें मिल गया होता। तुम चूंकि छोड़कर जाते हो, मेरे लिए भी व्यर्थ हो गया। तो क्या उचित न होगा कि मैं भी उसका अनुसंधान करूं, जो कि संपदा से भी ऊपर है!

अगर हम जीवन में आंख खोलकर देखेंगे, तो हमें दिखाई पड़ेगा। वास्तविक मनुष्य का अनुसंधान उसके लिए है, जो संपदा से ऊपर है, जो कि वास्तविक संपदा है। और बाहर की दिशाओं में कहीं भी उसकी कोई उपलब्धि न कभी हुई है और न कभी होगी। बाहर की दिशाओं में वह है ही नहीं, भीतर है। मनुष्य के जीवन के केंद्र पर है, परिधि पर नहीं है। उसका जो केंद्रीय स्वरूप है वहां है। जिन्होंने वहां झांका है, उन्होंने कभी अस्वीकार नहीं किया कि वहां नहीं है। और जिन्होंने बाहर खोजा है उनमें से एक ने भी कभी कहा नहीं कि वहां है। पूरे मनुष्य जाति के अनुभव को आप अकेले गलत नहीं कर सकेंगे। कोई आदमी नहीं कर सका है। मैं या आप, कोई भी अपवाद नहीं हो सकते हैं।

पांच-छह हजार वर्ष का ज्ञात अनुभव है। उसके पहले और हजारों वर्षों का अज्ञात अनुभव है। बाहर की दिशा में किसी भी मनुष्य को कभी भी कोई आनंद, कोई अमृत की उपलब्धि नहीं हुई है। और जिनको हुई है, उन्हें भीतर की दिशा में हुई है। इसलिए धर्म को मैं परम विज्ञान कहता हूं। उससे ज्यादा सुनिश्चित और कोई विज्ञान नहीं है। क्योंकि उसका कोई अपवाद आज तक उपलब्ध नहीं हुआ। कोई एक्सेप्शन आज तक धर्म का उपलब्ध नहीं हुआ। आज तक धर्म की अनुभूति बहुत सुनिश्चित आधारों पर खड़ी है। पहला बुनियादी आधार है, जिसकी मैंने आपसे चर्चा कीः बाहर जो संपदा है, वह थोथी है और झूठी है। भीतर एक संपदा है जो कि वास्तविक है। लेकिन उसकी खोज में पहला सूत्र होगा कि बाहर से हमारा भ्रम टूट जाए। एक डिसइल्यूजनमेंट की जरूरत है। बाहर से हमारा भ्रम खो जाए। बाहर का भ्रम खो जाए तो भीतर की यात्रा शुरू हो जाती है।

किसी मंदिर में जाने की उतनी जरूरत नहीं है, सवाल है बाहर के भ्रम के टूट जाने का। जिसके बाहर का भ्रम टूट गया, वह जहां भी हो, वहीं मंदिर में प्रवेश हो जाएगा। और जिसके बाहर का भ्रम नहीं टूटा है, वह मंदिर में हो या कहीं भी हो, वह किसी न किसी रूप में जगत में और संसार में ही बैठा रहेगा। उसका मंदिर में प्रवेश नहीं हो सकता। बाहर का जिसका अभी आग्रह शेष है, और जिसे लगता है कि मुझे कुछ मिल सकता है वहां, वहां मैं कुछ पा सकता हूं, कोई उपलब्धि हो सकती है, वह अभी मृत्यु के खिलाफ व्यर्थ ही लड़ रहा है। अभी उसकी खोज, व्यर्थ और क्षुद्र की तरफ है। अभी वह विराट की तरफ और अनंत की तरफ नहीं जा सकेगा।

तो सबसे बड़ा सौभाग्य है कि बाहर की खोज व्यर्थ हो जाए। बहुत पीड़ा होगी, बहुत दुख होगा, हाथ खाली हो जाएंगे। और सब होते हुए भी कुछ भी मालूम नहीं होगा। बहुत उदासी आएगी, बहुत संकट मालूम होगा, बहुत संताप में चित्त घिर जाएगा। लेकिन यह संताप, यह अतृप्ति, यह उदासी, यह घबराहट, यह बेचैनी ही उस द्वार में प्रवेश देती है जहां कि इस सबका विनाश हो जाता है और हम शांति को और सत्य को और संपदा को उपलब्ध होते हैं। कोई पूछे कि बाहर का भ्रम अगर टूट गया, तो भीतर जाने के लिए क्या करेंगे? मेरे अनुभव में बड़ी अदभुत सी बात आती है। अगर बाहर का भ्रम

टूट जाए, सिर्फ बाहर का भ्रम टूट जाए, तो आप पाएंगे कि आप भीतर पहुंच गए हैं। भीतर जाने के लिए कुछ भी नहीं करना होता। क्योंकि भीतर कोई यात्रा के लिए जगह नहीं है। भीतर तो आप हैं। अगर बाहर का पूरा भ्रम टूट जाए तो आप एक झटके में, एक क्रांति की तरह, एक विस्फोट की तरह पाएंगे कि आप भीतर खड़े हैं।

भीतर आप निरंतर खड़े रहे हैं, लेकिन बाहर आंखें भटकती रही हैं। इसलिए भीतर जाने की, भीतर पहुंचने की, भीतर की यात्रा का प्रारंभ नहीं हो पाया। जैसे कोई आदमी सोया हो, सपने देख रहा हो। यहां सोए पाटन में, और सपने देख रहा हो दूर के, दूर नगरों के। सपनों में सोचे कि इतनी दूर निकल आया हूं, वापस कैसे जाऊंगा! और कोई उसे हिला दे और जगा दे, और वह पाए कि वह पाटन में है और दूर नहीं था। वैसे ही हमने बाहर की यात्रा की है मन में, कल्पनाओं में, विचारों में, हम भीतर मौजूद हैं अभी भी। कोई कहीं भी हो, वह अपने भीतर को खो नहीं सकता। वह अपने अंतस्तल को खो नहीं सकता। वह अपने स्वरूप को खो नहीं सकता। लेकिन बाहर की कल्पना है, स्वप्न है, विचार है, अगर इनका भ्रम टूट जाए, तो वह हड़बड़ा कर पाएगा कि वह भीतर खड़ा है। अगर संसार का भ्रम टूट जाए तो हम पाएंगे कि हम परमात्मा में प्रतिष्ठित हैं। और तब एक क्रांति हो जाती है। और तब जीवन में एक आनंद का और प्रेम का प्रवाह शुरू हो जाता है। और तब जीवन में मृत्यु का भय विलीन हो जाता है। और जहां भय विलीन है, वहां चित्त मुक्त है। और जहां भय शून्य है, वहां चित्त परमात्मा में संलग्न है। और जहां भय शून्य है, जहां मृत्यु विसर्जित हो गई। वहां हम अमृत में खड़े हैं। अमृत में खड़े हो जाना स्वरूप में खड़े हो जाना है। स्वरूप में पहुंच जाना जीवन को अनुभव करना है।

इस जीवन को यदि हम अनुभव न करें, तो हम गलते हैं और धीरे-धीरे मरते हैं। इसे मैं जीवन कहने को राजी नहीं हूं। एक-दो छोटी सी कहानियां कहूंगा और अपनी चर्चा को पूरा करूंगा। इसे मैं जीवन कहने को राजी नहीं हूं और मैं आपको असंतुष्ट करना चाहूंगा। साधारणतः लोग कहते हैं कि धर्म संतोष देता है, मैं कहता हूं कि धर्म बहुत गहरा असंतोष है। संतोष तो उसके बाद में उपलब्ध होगा। प्राथमिक रूप से तो धर्म बहुत गहरा डिस्कन्टेंट है, बहुत गहरा असंतोष है। तो मैं तो असंतोष देना चाहता हूं। साधारणतः लोग कहते हैं, धर्म आनंद देता है; और मैं तो चाहता हूं कि पहले दुख उपलब्ध हो, तो आनंद उपलब्ध होगा।

यह जीवन का दुख अनुभव में आए। इसलिए मैं कहना चाहूंगा, जिसे आप जीवन समझते हैं वह जीवन नहीं है, वह एक लंबी मौत है। हम धीरे-धीरे मरते जा रहे हैं। मैं जिस दिन पैदा हुआ उस दिन से मरना शुरू हो गया हूं। और रोज-रोज मर रहा हूं। आप भी मर रहे हैं। इतनी देर घंटे भर हम यहां बैठे, घंटे भर हम मर गए। हमने घंटे भर और जीवन खो दिया, हम रोज-रोज मरते जा रहे हैं। हम प्रति घड़ी मरने के करीब सरकते जा रहे हैं। इसको कैसे जीवन कहें! यह किस अर्थों में जीवन है! यह जीवन बिलकुल नहीं है। यह लंबी मौत है, यह ग्रेजुअल डेथ है। यह धीमा-धीमा आत्मघात है। बहुत धीमा हो रहा है इसलिए ज्ञात नहीं होता। अंत में जब सारी शक्ति चुक जाती है, हम पाते हैं कि मर गए।

एक मुसलमान फकीर हुआ। एक गांव के बाहर रहता था, गांव से कोई दो-चार मील के फासले पर था। वहां से कोई भी आदमी कभी आकर पूछता कि गांव का रास्ता कहां है, तो जो मरघट का रास्ता था वह बता देता। मरघट से दो मील का चक्कर लगाकर लोग लौटते, उसको गालियां देने लगते कि तुमने यह क्या किया! कई बार तो लोगों ने आकर उसको चोट कर दी कि तुम कैसे पागल आदमी हो। मरघट में भेज दिया! पर वह कहता है, जहां तक मेरी समझ है, जिसको तुम बस्ती कहते हो, उसको मैं मरघट कहता हूं। क्योंकि वहां सब मरनेवाले लोग इकट्ठे हैं, जो आज नहीं कल मर जाएंगे। वहां सब मुर्दे इकट्ठे हैं जिनकी तारीखें तय हैं। कोई आज किसीकी तारीख होगी, किसी की परसों होगी, किसी की साल भर बाद होगी, किसी की दो साल बाद होगी। वहां तो मुर्दे बसे हैं, वहां बस्ती कहां है। लेकिन जो मरघट है, वहां जो बस गए हैं वे कभी नहीं उजड़ते। वे बसे ही हुए हैं। वहां से कोई मरता नहीं। इसलिए वह कहने लगा था फकीर कि मैं उसको तो बस्ती कहता हूं मरघट को, और बस्ती को मरघट कहता हूं। इसलिए मैंने तुम्हें गलती बता दिया। अपनी तरफ से तो ठीक बताया। अब तुम्हारी जहां मर्जी हो, अगर तुम्हें तुम्हारी बस्ती में जाना है तो इस तरफ है और अगर मेरी बस्ती में जिसे मैं बस्ती समझता हूं...।

और निश्चित ही जो हमें जानते हैं, वे कहेंगे कि हम मरघट में हैं। हम सब मुर्दा हैं और मरने की राह देख रहे हैं। लेकिन इसको हम जीवन समझते हैं, तो भ्रांति हो जाती है। इसको ही जीवन समझ लेना अधर्म है। और फिर इस अधर्म से सारा अधर्म पैदा होता है। लेकिन बुनियाद में अधर्म यह है कि हम इसे जीवन समझ लें। यह जीवन नहीं है—यह बोध असंतोष है, यह बोध दुख है, यह बोध पीड़ा है। यह बोध जितने लोगों में बढ़ जाए उतने जगत में धर्म का विकास होगा। कोई गीता और कुरान और महावीर और बुद्ध की वाणी फैला देने से विकास नहीं होगा। विकास होगा इस बोध को फैला देने से कि जिसे हम जीवन समझे हुए हैं यह जीवन नहीं है।

और अगर यह घबड़ाहट हमारे भीतर बैठ जाए कि जीवन नहीं है, तो खोज शुरू हो जाएगी कि जीवन क्या है? अगर मुझे ज्ञात हो जाए कि जिस मकान में मैं बैठा हूं उसमें आग लगी है। तो क्या मैं पूछूंगा, लोगों से पता लगाऊंगा कि आग लगी है? क्या मैं सोचूंगा कि बाहर निकलूं या न निकलूं? क्या मैं किताबें पढ़ूंगा ग्रंथ पढ़ूंगा? गुरुओं के पास जाऊंगा पूछने कि बाहर निकलने का मार्ग क्या है? अगर मुझे ज्ञात हो जाए कि भवन में आग लगी है, तो मैं सब छोड़कर भवन के बाहर निकलने की प्राणपण से चेष्टा करूंगा। मैं बाहर निकल जाऊंगा। अगर हमें दिखाई पड़ जाए कि जिसे हम जीवन समझ रहे हैं वह लपटें लगी हुई मृत्यु से ज्यादा नहीं है, तो बाहर निकलने की एक तीव्र आकांक्षा पैदा होगी। एक अभीप्सा पैदा होगी कि हमारी सारी शक्ति वहां इकट्ठी हो जाएगी। और हम उसके ऊपर उठना चाहेंगे।

और उस शक्ति के इकट्ठे होने से, उस अभीप्सा से मनुष्य का भीतर प्रवेश होता है। और जो अपने द्वार भीतर के खोल लेता है कोई बाहर का जीवन उसके लिए बंद नहीं हो जाता है। लेकिन जो भीतर के द्वार खोल लेता है वह भीतर जीता है, प्रतिक्षण बाहर होते हुए भी भीतर जीता है। वह प्रतिक्षण बाहर काम करते हुए भी भीतर बना रहता है। उसकी उपस्थिति परमात्मा में होती है, उसका कर्म जगत में होता है। वह कोई छोड़ कर भाग नहीं जाता। भागने का कोई कारण नहीं है। जब तक जीवन है, तब तक कर्म है। जब तक जीवन है, तब तक कर्म रहेगा ही। लेकिन अभी कर्म ही सब कुछ है और चेतना कुछ भी नहीं। तब चेतना सब कुछ होती है और कर्म केवल उसकी अभिव्यक्ति रह जाती है—उसके आनंद की, उसके प्रेम की। तब कर्म सेवा बन जाता है। वैसा व्यक्ति जो भीतर प्रतिष्ठित होता है। बाहर के जगत में सेवा और प्रेम और सारे कर्म उसके अनासक्त हो जाते हैं। और तब वह जान पाता है अर्थ को। तब वह जान पाता है अभिप्राय को। और तब वह धन्यता अनुभव करता है। तब उसके हृदय से प्रार्थना उठती है परमात्मा के लिए धन्यवाद के लिए, थैंक्स गिविंग के लिए, कि वह धन्यवाद दे कि कितना अमृत जीवन, कितने आनंद का, कितना संगीत उसके भीतर है। उसके लिए वह धन्यवाद करे। प्रार्थना मांगना नहीं है, बल्कि धन्यवाद है।

धन्यवाद है उसके लिए जो मिला है, धन्यवाद उसके लिए जो मैं हूं। तो धार्मिक चेतना धन्यवाद करती है। और जो चेतना धन्यवाद नहीं कर पाती, वह चेतना व्यर्थ है। उसने कुछ पाया नहीं, इसलिए धन्यवाद का कोई मौका नहीं है। जिस चेतना में ग्रेटीटयूड नहीं मालूम होगा। वह मालूम भी कैसे होगा। कृतज्ञता कैसे मालूम होगी, जब तक कि मुझे लगे ही न कि मेरे पास कुछ है। उस कुछ की प्रेरणा पैदा होनी चाहिए, प्यास पैदा होनी चाहिए। जो जहां है, जैसा भी है, अपने भीतर के जगत के प्रति एक उत्सुकता जागनी चाहिए। और इसका कोई धर्म से संबंध नहीं है, किसी संप्रदाय से संबंध नहीं है, किसी मंदिर और मस्जिद से संबंध नहीं है। क्योंकि मंदिरों ने, मस्जिदों ने, धर्मों ने, संप्रदायों ने तो मनुष्य को परमात्मा से तोड़ने के लिए और दीवालें खड़ी कर दीं। मनुष्य को मनुष्य से तोड़ दिया। इसका संबंध तो मनुष्य के आंतरिक स्वरूप से है। उस वास्तविक धर्म से है जो सभी धर्मों का प्राण है। उस वास्तविक सत्य से है, जो कि जिन्होंने कभी भी कुछ जाना है, उन सबकी अनुभूति में प्रकट हुआ है। परमात्मा करे, ऐसा असंतोष अनुभव हो आपको। ऐसी पीड़ा अनुभव हो। भवन में लगी हुई लपटें आपको ज्ञात हों। और बाहर की तरफ आप आंख खोलकर देखने में समर्थ हो सकें। ताकि बाहर का भ्रम टूट जाए। वास्तविक संपत्ति की खोज शुरू हो और व्यर्थ की संपत्ति व्यर्थ दिखाई पड़ने लगे। यह कामना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उससे ऐसा मुझे लगता है कि कहीं न कहीं हमारे भीतर कोई प्यास है। कहीं न कहीं हमारे भीतर कोई आकांक्षा है। कहीं न कहीं कोई बीज है, जिसको अगर ठीक-ठीक मौका मिले, ठीक-ठीक पानी मिले, भूमि मिले, प्रकाश मिले, तो वह जरूर अंकुरित हो सकता है। और बीज तब तक पीड़ा अनुभव करेगा जब तक

कि वह वृक्ष न बन जाए, उसमें फूल न आ जाएं और फल न लग जाएं। पर मनुष्यों के बीज नष्ट हो जाते हैं। और उनमें बहुत कम में फूल लग पाते हैं, फल लग पाते हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण और क्राइस्ट इसी तरह के मनुष्य हैं जिनके बीज पूरे हो गए, और जिनमें फूल लगे हैं, और फल लगे हैं, और जिनसे गंध फैली और सुवास फैली, और उनका जीवन एक नृत्य बन गया और संगीत बन गया, और हजारों लोगों के हृदय में भी उसकी प्यास जगी।

जब तक हमारे जीवन में भी वैसी घटना न घट जाए, हम अपने बीज को जब तक पूरा न फैला लें...। और क्या है बीज? अगर मनुष्य बीज है तो उसका पूरा वृक्ष हो जाना परमात्मा का हो जाना है। मनुष्य के भीतर बीज है परमात्मा होने का और जब तक हम परमात्मा न हो जाएं। तब तक यात्रा अधूरी है, और हम बीच में अटके हैं। और हमारा बीज तड़पेगा और परेशान होगा और पीड़ा अनुभव करेगा। क्योंकि उसमें अंकुर फूटना चाहिए। अंकुर फैलना चाहिए, और वह पूरा होना चाहिए। पूर्ण होकर तृप्ति मिलती है। और पूर्ण होकर शांति मिलती है। और पूर्ण होकर अर्थ, अभिप्राय उपलब्ध होता है। परमात्मा करे उस पूर्णता की तरफ प्यास को जगाए, परमात्मा करे उस पूर्णता की तरफ हमारे असंतोष को जगाए। उसकी कामना करता हूं।

और मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं। सब तरफ अपने मन को खोलें और जहां से भी प्यास को जगाने को कुछ भी आ सके, उसे आने दें। और जहां से भी आपके बीज को बेचैन करने को और आंदोलित करने को कुछ आ सके, उसे आने दें। मन के द्वार खोलें। हम सब के द्वार मन के बंद हैं और कुछ भी उसमें आना बंद हो गया है। उसे खोलें, और मन के भीतर आने दें। जगत ही, संसार का अनुभव ही हमारे भीतर उस उत्कंठा को पैदा करता है, जो परमात्मा तक ले जाती है।

अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। प्रभु करे! सबके भीतर के बीज विकसित हों, परमात्मा तक पहुंचें।

मैं किस संबंध में आपसे कहूं। यह भी सोचता रहा। जीवन में सुख पाने की आकांक्षा है। सभी को है। लेकिन जो भी सुख पाने की आकांक्षा से भरता है। वह साथ-साथ ही दुख भी पाता है। यह स्वाभाविक है। यदि दुख का अनुभव न हो तो सुख का कोई अनुभव नहीं होगा। इसलिए मैं सुख और शांति को अलग बातें मानता है। सुख और शांति को एक ही बात नहीं मानता। महावीर या बुद्ध की खोज सुख के लिए नहीं। शांति के लिए है। हम सबकी खोज सुख के लिए है। सुख और शांति में भेद है। वह थोड़ा हम समझेंगे तो कुछ और बातें समझनी आसान हो जाएंगी।

सुख भी बहुत विचार करके देखा जाए तो एक उत्तेजना की अवस्था है। सुख भी एक अशांति है। इसलिए यह भी हो सकता है बहुत सुख मिल जाए। तो इतनी अशांति हो कि प्राण का अंत हो जाए। बहुत सुख में लोग मर जाते हैं, तो सुख शांति की अवस्था नहीं है। दुख भी शांति की अवस्था नहीं है। सुख-दुख दोनों उत्तेजनाओं की अवस्थाएं हैं। दोनों चित्त की बड़ी अद्वेलित अवस्थाएं हैं। थोड़ा सा भेद है। सुख प्रीतिकर उत्तेजना है, और दुख अप्रीतिकर उत्तेजना है। लेकिन दोनों उत्तेजनाएं हैं। और यह भी हो सकता है कि जो उत्तेजना अभी प्रीतिकर लगें वह अगर बार-बार पुनरुक्त हो तो अप्रीतिकर हो जाए।

जो सुख है वह दुख में परिवर्तित हो सकता है। भोजन सुखद लगता हो, ज्यादा कर लिया जाए दुख हो जाएगा। कोई भी भोग सुखद लगता है। ज्यादा कर लिया जाए दुख हो जाएगा। इसीलिए सुख और दुख में स्वरूपगत भेद नहीं है। वे एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। दुख अगर आदी हो जाए आपको आदत हो जाए, तो दुख भी सुखद हो जाता है। अगर कोई व्यक्ति पहली दफा जिसे दुख की तरह अनुभव करता है। अगर निरंतर उसको अनुभव करता रहे तो अनुभव के साथ ही साथ उसका दुख कम हो जाएगा। और धीरे-धीरे दुख की आदत ही सुख में परिवर्तित हो सकती है।

एक अरबी कहानी है—एक गांव में एक मालिन वर्षों से रहती थी। उसकी एक सहेली कभी गांव मछलियां बेचने आई। तो उसने उसे निमंत्रित किया और कहा कि रात मेरे घर रुक जाओ। बचपन की दोनों मित्र थी। मछलियां बेचने वाली औरत रात को मालिन के घर में रुक गई। मालिन ने यह सोचकर कि जो हिस्सा उसके झोपड़े का सबसे ज्यादा फूलों के

करीब था वहां उसका बिस्तर लगा दिया। और जो सबसे ज्यादा सुगंधि फूल थे। वे टोकरी में लाकर फूल उसके पास रख दिए। लेकिन रात बीतने लगी। और वह मछली बेचने वाली औरत सो नहीं सकी।

बार-बार मालिन ने पूछा—बात क्या है, नींद नहीं आती। उसने कहा—क्षमा करें! शायद तुम्हें बुरा लगे। लेकिन यह फूल मेरे पास से हटा दो। और जिस टोकरी में मैंने बाजार में मछलियां बेची है। उसमें थोड़ा पानी डालकर छिड़क कर मेरे पास रख दो। मुझे मछलियों की गंध आए तो नींद आ जाए। फूल हटा दिए गए, द्वार बंद कर दिया गया। ताकि गंध भीतर न आए। और मछलियों की टोकरी को थोड़ा सा पानी छिड़क कर उसके पास रख दिया गया। जैसे ही मछलियों की गंध उसे आई। उसे गहरी नींद आ गई।

मालिन रात भर उन मछलियों की गंध के कारण सो न सकीं। मछलियों की गंध पहली दफा अप्रीतिकर लगेगी। क्रमशः प्रीतिकर हो जाएगी। एक सीमा पर जाकर दुख देना बंद कर देगी। और सुख भी दे सकती है। सुख और दुख आपस में परिवर्तित हो सकते हैं। सुख और दुख स्वरूपतः भिन्न नहीं है। जैसे सर्दी और गर्मी में कोई भेद नहीं है। जो भी भेद है, वह डिग्रीस का है। वैसे ही सुख-दुख में कोई बहुत बुनियादी भेद नहीं है।

जीवन के संबंध में यह सत्य जानना बहुत आवश्यक है। कि सुख-दुख सापेक्ष घटनाएं है। और उनमें कोई बहुत गहरा अंतर नहीं है। जिन बातों को हम समझते हैं कि बहुत दुखद है। वे भी निरंतर अभ्यास से सुख में परिवर्तित हो सकते हैं। जिन बड़े-बड़े महलों में हम हैं, अगर जंगल के आदिवासियों को लाकर उनमें रात ठहरा दिया जाए। वे सो नहीं सकेंगे। जिन बहुत सुखद गद्दों को हम हजारों रुपये खर्च करके आराम समझते हैं। अगर जंगल में रहने वाले किसी व्यक्ति को लाकर उन पर विश्राम करने को छोड़ दिया जाए। तो रात भर सिवाय कष्ट और पीड़ा के उसे कुछ भी नहीं होगा।

पहली दफा अनेजाइन के कछाड़ में जब पहली दफा पश्चिमी लोग पहुंचे। तो वहां बहुत सर्दी थी। और वे काफी कोट और चमड़ों के कपड़े पहने हुए थे। और फिर भी आग जलाकर अपने को गर्म करते थे। आदिवासी दूर-दूर दरख्तों के पास खड़े होकर देख रहे थे नंगे। उनके ऊपर वस्त्र नहीं थे। जिस आदमी ने अपनी डायरी में यह लिखा है। उसने लिखा है हम हैरान हो गए। वे कई गज के फासले पर नंगे खड़े थे सर्दी में। हम चमड़े के कपड़े पहने हुए थे। फिर भी हाथ-पैर कंप रहे थे। आग जलाए हुए थे। और वे नंगे खड़े थे, और दूर खड़े थे फिर भी हमारी आग के कारण उनको पसीना चू रहा था। हम उस डायरी के लिखने वाले ने लिखा है हैरान हुए। हमें सर्दी बहुत कष्टप्रद हो रही थी। हमारी आग के कारण वे बहुत कष्ट झेल रहे थे। उनकी नग्न रहने की आदत थी। नग्न रहना उनके सुख का हिस्सा हो गया। हम जिन आदतों में बंद हो जाते हैं। वे हमारे सुख का हिस्सा हो जाते हैं।

फ्रांस में क्रांति हुई। वेस्टाइल का किला है फ्रांस में। वह फ्रांस का सबसे खतरनाक जघण्य अपराधियों को बंद करने का स्थान रहा है। जो आजीवन कारावास के लिए बंद किए जाते हैं। वेस्टाइल में बंद कर दिए जाते थे। जब फ्रांस में क्रांति हुई। तो विद्रोहियों ने सोचा कि सबसे पहले वेस्टाइल के किले को तोड़ दें। और उसके कैदियों को मुक्त कर दें। वे कितने खुश न होंगे। वहां ऐसे लोग थे, जो पचास-पचास वर्ष से बंद थे। अस्सी वर्ष के हो गए थे। नब्बे वर्ष के हो गए थे। उनकी आंखें उस अंधेरे में अंधी हो गई थी। उनकी जंजीरें उनके शरीर का हिस्सा हो गई थी। क्योंकि वह पहना दी गई थी। उसके बाद कभी निकाली नहीं गई थी।

उनकी जंजीरें तोड़ दी गई, उनको उनकी गंदी कोठरियों के बाहर निकाल दिया गया। और उनसे कहा कि तुम स्वतंत्र हो। लेकिन सांझ को क्रांतिकारी हैरान हुए, आधे से ज्यादा कैदी वापिस लौट आए। और उन्होंने कहा कृपा करें, मरते समय हमें कष्ट न दें। हम भीतर ठीक है। हमारी जंजीरें हमें पहना दी जाए, उनके बिना जीना बड़ा अभावग्रस्त मालूम होता है। जैसे कोई चीज कमी हो गई। वह तो हमारे शरीर के हिस्से हो गए। पचास वर्ष तक जंजीरें जिस हाथ पर बंधी रही हो। पैर में कड़ियां पड़ी रही हो। वे बिना कड़ियों के चल नहीं सकता।

और उन्होंने कहा—बाहर बहुत प्रकाश है। उससे बड़ी घबराहट होती है। आंखें बड़ी तिलमिला जाती है। और फिर रास्तों पर बड़े अजनबी लोग है। अपरिचित दुनिया है। यह ठीक है, यहां इन कोठरियों में यह परिचित है, अपनी है। धीरे-धीरे इनका टुकड़ा-टुकड़ा मैत्री से भर गया। और यहां की दो रोटी काफी अच्छी है। क्योंकि बिना कुछ किए मिल जाती

है। क्रांतिकारी हैरान हुए होंगे लेकिन हैरानी होने की कोई बात नहीं है। सुख और दुख बहुत कुछ ऐसी उत्तेजनाएं है। जिनके हम आदी हो जाते हैं। एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। लेकिन दोनों उत्तेजनाओं की अवस्थाएं है, यह मैं आपसे कहना चाहूंगा।

दोनों में कोई भी शांति नहीं है, इसलिए न तो दुखी आदमी शांत होता है, न सुखी आदमी शांत होता है। यह वजह है कि दुनिया में दुखी भी अशांत होता है। और सुखी भी अशांत होता है। गरीब मुल्क भी अशांत है, समृद्ध मुल्क भी अशांत है। दरिद्र भीख मांगने वाला भी अशांत है, और जिसके सिर पर ताज रखा है वह भी अशांत है। अशांति न तो दुख से जाती है। और न सुख से जाती है। असल में सुख-दुख दोनों ही अशांति की अवस्थाएं हैं।

इसलिए जब साधारणतः कहा जाता है कि मनुष्य सुख को और शांति को खोजता है। तो मैं सुख और शांति को एक ही अर्थ में प्रयोग करने में थोड़ा असमर्थ हूं। जो मनुष्य सुख को खोजता है वह अशांति को खोजता है। जो मनुष्य सुख को खोजता है वह शांति को नहीं खोजता। शांति की खोज बड़ी दूसरी खोज है। शांति की खोज सुख की खोज नहीं है। उस अर्थों में जिसे हम सुख की भांति जानते हैं। जब तक हम सुख को खोजेंगे तो दो काम हमारे भीतर होते रहेंगे। एक तो यह होगा कि हम सुख पाना चाहेंगे और दुख से बचना चाहेंगे। सुख आएगा उसको पकड़ कर रोकना चाहेंगे और दुख आएगा तो उसे धक्के देकर घर के बाहर निकालना चाहेंगे।

दुख भीतर होगा तो उसको विदा करना चाहेंगे। सुख बाहर होगा तो उसको आमंत्रित करना चाहेंगे। जो आदमी सुख की आकांक्षा से भरा है, वह दुख को हटाएगा, सुख को बुलाएगा। आए हुए सुख को पकड़ेगा, आए हुए दुख को हटाने की कोशिश करेगा। परिणाम में उसका चित्त अशांत होगा। शांत कैसे होगा, यह तो एक तनाव होगा। सुख को बुलाने का, सुख को पकड़ने का, दुख को हटाने का, दुख को न आने देने का। यह तो सारा संघर्ष होगा यह तो सारी कानफलिक्ट होगी। यह तो अंर्तद्वंद होगा, इसमें शांति कैसे संभव है।

तो कोई सोचता हो कि सुख में शांति नहीं है। इसलिए दुख का वरण कर लें। एक आदमी बड़े भवन में रहता है। हम देखते हैं बड़े भवन में कोई शांति नहीं है। इसलिए दूसरा आदमी भवन को छोड़कर जंगल में चला जाएगा। एक आदमी बहुत अच्छे वस्त्र पहनता है इसलिए दूसरा व्यक्ति सोचें, अच्छे वस्त्रों में कोई शांति नहीं है। इसलिए नग्न हो जाए। और भीख मांगने लगे। एक आदमी सोचता है, घर-गृहस्थी में कोई शांति नहीं है। बच्चे-पत्नी में कोई शांति नहीं है। इसलिए बच्चे पत्नियों को छोड़ दें। संन्यासी हो जाए। तो जहां-जहां उसे दिखाई पड़ता है, कि सुख है। सुख में कोई शांति नहीं है तो वह दुख को वरण कर लें। मैं आपसे प्रार्थना करूं, दुख में भी कोई शांति नहीं है। यदि सुख में शांति नहीं है तो दुख में भी कोई शांति नहीं है।

दुख भी अशांति की अवस्था है। यह हो सकता है कि उस दुख में बहुत दिन रहा जाए तो उसकी हमें आदत हो जाए। और अशांति परिचित हो जाए। लेकिन जिस भांति बहुत अच्छे वस्त्रों में रहने वाले व्यक्ति को अगर सड़क पर नग्न घूमने को कहा जाए तो उसे कष्ट होगा। तो जो नग्न सड़क पर घूम रहा है। उसे अगर बहुत अच्छे वस्त्र पहना कर भवन में रहने को कहा जाए तो उसे कष्ट होगा। यह दोनों दो आदतों के शिकार हो गए है। एक सुख का आदी हो गया है। एक दुख का आदी हो गया है। लेकिन शांति दोनों में नहीं है। और न स्वतंत्रता है, क्योंकि जहां शांति नहीं है वहां स्वतंत्रता भी नहीं होगी। वहां परतंत्रता होगी बंधन होगा, तो कुछ लोग भोग में दुख भोगते हैं। कुछ लोग त्याग का दुख भोगते हैं। इसे मैं आपसे स्पष्ट कहूं।

कुछ लोग गृहस्थ का दुख भोगते हैं, कुछ लोग संन्यास का दुख भोगते हैं। यह जो संन्यास हैः जो दुख के वरण करने से निकलता है यह वास्तविक शांति का संन्यास नहीं है। बल्कि सुख में सुख नहीं पाया इसलिए दुख प्रतिक्रिया रूप में रिएक्शन में स्वीकार कर लिया गया है। यह वास्तविक संन्यास नहीं है। वास्तविक संन्यास का संबंध दुख के वरण से नहीं। बल्कि शांति की उपलब्धि से है। वास्तविक संन्यास का संबंध भोग के विरोध में त्याग करने से नहीं बल्कि भोग और त्याग दोनों के ऊपर उठ जाने से हैं। क्योंकि भोग और त्याग दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू है। जैसे सुख और दुख एक ही

सिक्के के दो पहलू हैं। जो आदमी भोग को पकड़ता है, वह भी अशांत होता है। क्योंकि पकड़ने की गहरी आकांक्षा तनाव पैदा करती है। और जो आदमी भोग से भागता है वह भी अशांत होता है। क्योंकि भागना कोई शांति का लक्षण नहीं है।

मैं भी एक संन्यासी के पास गया। एक बहन मेरे पास थी। वे संन्यासी नीची आंख किए रहे। मैंने उनसे बहुत कहा—आप आंख ऊपर क्यों नहीं करते। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं स्त्री को नहीं देखता हूं। तो मैंने उनसे पूछा—कि यह तो बड़ी अशांति की अवस्था होगी। क्योंकि स्त्री को न देखने का भय है। स्त्री को देखने में भय है। भीतर छिपे किसी बहुत अशांत, किसी बहुत कामातुर चित्त का लक्षण है। किसी बहुत गहरी सेक्सुअलिटी का लक्षण है। यह डर, यह भय चित्त को शांत न होने देगा। एक वह व्यक्ति है जो स्त्री के पीछे ही आंखों को दौड़ाता रहेगा। एक वह है जो स्त्री को देख कर डरा है और आंख नीचे झुकाए हुए है। यह दोनों दो विपरीत बिंदुओं पर खड़े हुए एक ही चित्त के उदाहरण है। यह कोई भिन्न-भिन्न चित्त नहीं है। एक आदमी है जो धन के पीछे पागल है। एक बहुत बड़े संन्यासी से मुझे परिचय कराया गया।

और कहा गया कि यह इतने विरक्त है कि अगर कोई पैसा सामने लाए तो यह मुंह मोड़ लेते हैं। पैसे को देखते नहीं है। मैंने कहा—कि पैसे को देखकर लार का गिर जाना, या मुंह का फेर लेना एक ही चित्त के दो उदाहरण है। इनमें बहुत बुनियादी भेद नहीं है। यह एक ही बात की प्रतिक्रियाएं है। दूसरी बात हमें त्याग मालूम होती है, पहली बात भोग मालूम होती है, पहली बात में सुख का आकांक्षी दिखाई पड़ता है, दूसरी बात में दुख को वरण करने वाला दिखाई पड़ता है। लेकिन यह दोनों ही चित्त मुक्त चित्त नहीं है। परतंत्र चित्त है। और दोनों ही चित्त अशांत है। अशांति को समझना जरूरी है। चित्त जब भी कुछ पकड़ेगा, तो अशांत हो जाएगा। चाहे सुख को पकड़े, चाहे दुख को पकड़े, चाहे वस्त्रों को पकड़े, चाहे नग्नता को पकड़े, चाहे घर को पकड़े, चाहे संन्यास को पकड़े। जब भी चित्त कुछ पकड़ेगा और जब भी वह कहीं अपने को थोपना आरोपित करना चाहेगा। जब भी वह कोई आधार लेगा अपने लिए। तभी वह अशांत हो जाएगा। असल में जहां पकड़ है, वहां अशांति है, फिर चाहे पकड़ सुख की हो, चाहे दुख की हो। चाहे राग की हो, चाहे विराग की हो।

शांति तो केवल वीतरागता में है। वीतरागता विराग नहीं है, वीतरागता राग भी नहीं है। राग और विराग दोनों से मुक्त हो जाने में शांति है तो विरागी को मैं गृहस्थता, सिर-शासन करता हुआ रूप मानता हूं। उलटा खड़ा हुआ, तो जो-जो गृहस्थ करता है उसके विरोध ने, उसके प्रतिशोध ने, वह उससे उलटा-उलटा करता है। अगर आप बड़े भवन में रहते हैं तो भवन छोड़ता है। आप वस्त्र पहनते हैं तो वस्त्र छोड़ता है। आप जो-जो करते हैं उसको वह छोड़ता है। वह आपका ही सिर-शासन करता हुआ रूप है। लेकिन सिर-शासन करने से चित्त परिवर्तित नहीं होता। क्योंकि चित्त का कोई सिर-शासन नहीं होता। आप उलटे खड़े हो जाए तो भी चित्त वही रहेगा। आप सीधे खड़े है तो भी चित्त वही है, आप सिर के बल खड़े हो जाए तो भी चित्त वही रहेगा। हां चमत्कार जरूर हो जाएगा। क्योंकि सिर के बल खड़ा होना जरा कठिन है।

पैर पर खड़ा होना जरा आसान है। इसलिए जो पैर पर खड़े हैं वे सिर के बल पर खड़े हुए आदमी को नमस्कार कहेंगे कि आप बहुत गजब का काम कर रहे हैं। आप बहुत बड़ी बात कर रहे हैं आपके हम चरण छूते हैं। असल में सर्कस को देखने का जो मजा है, वही उलटे खड़े हुए लोगों को देखने का मजा है। लेकिन इससे कोई जीवन मुक्त नहीं होता। इससे कोई जीवन मुक्त नहीं होता है। गृहस्थ के विरोध में संन्यास नहीं है। वास्तविक संन्यास तो द्वंद से मुक्त हो जाने में है। जहां भी द्वंद के किसी एक हिस्से को मैं पकड़ता हूं। वहां मैं कायमरूप से वही कर रहा हूं जो दूसरे कर रहे हैं। यद्यपि उनके विरोध में कर रहा हूं। जो आदमी धन की ओर भाग रहा है। और जो आदमी धन से भाग रहा है। यह दोनों ही धन को स्वीकार करते हैं, मान्यता देते हैं। धन को, धन के अर्थ को इनके मन में मूल्य है। कोई हमसे पूछे, मैं एक जगह गया—और एक व्यक्ति ने मुझसे कहा कि यहां एक बहुत बड़े संन्यासी है। मैं पूछा कि उनके बड़े संन्यासी होने का कारण क्या है? तो उसने कहा—कि उन्होंने बहुत संपत्ति थी उसको छोड़ दिया। तो मैंने कहा—कि तुम्हारे मन में संपत्ति का इतना मूल्य है।

उतना संन्यासी का मूल्य नहीं है। क्योंकि संन्यासी के बड़े होने को भी तुम संपत्ति से तौलते हो कि उसने कितनी संपत्ति छोड़ी अगर उसके पास यह संपत्ति न होती तो संन्यासी छोटा हो जाता। फिर उन्होंने कहा—कि नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। बड़े-बड़े लोग उन्हें मानते हैं। मैंने कहा—कौन बड़े-बड़े लोग, उन्होंने कहा कि खुद हमारे राज्य के जो महाराजा है वे उनके चरण छूने आते हैं। तो मैंने कहा कि महाराजा का तो तुम्हारे मन में मूल्य है संन्यासी का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि

महाराजा उनके चरण छूते हैं, इसलिए संन्यासी बड़ा है। महाराजा क्यों बड़े हैं क्योंकि उनके पास धन है। हम त्याग का भी मूल्य भोग से आकेंगे, हम त्याग का भी मूल्य भोग से आकेंगे, क्योंकि त्याग असल में भोग का ही विरोध है। इसलिए कितना भोग छोड़ा उतना बड़ा त्याग मालूम होगा। वह भोग की ही शरणी में बैठा हुआ है।

वह वही गणित है, गणित में भेद नहीं है। और जब तक हम इन सुख और दुख के बीच चुनाव करेंगे। तब तक भ्रांति होती रहेगी। एक भ्रांति यह है कि धन के मिलने से सुख मिलेगा, दूसरी भ्रांति यह है कि धन के छोड़ने से मिल जाएगा। लेकिन दोनों स्थितियों में धन केंद्र है, यह मैं आपको कहना चाहता हूं। इस पर थोड़ा विचार करें। दोनों स्थितियों में एक आदमी सोचता है, कि पत्नी के मिलने से सुख मिलेगा। दूसरा आदमी सोचता है, कि पत्नी को छोड़ने से सुख मिलेगा। लेकिन दोनों स्थितियों में पत्नी केंद्र है। और दोनों गणित में पत्नी मध्य है। उससे सोचा जा रहा है। धन हों, या कुछ और हो। दोनों स्थितियों में जो विराग है वह, और जो राग है वह, इनकी सोचने की सरणी इनका तर्क इनका लोजिक एक ही है। यह लोजिक, यह तर्क, यह सोचने की सरणी, तब तक होगी, जब तक मन अशांत रहेगा। यह अशांत चित्त की दशा है, शांत कैसे व्यक्ति हो सकता है? जब वह इन दो द्वंदों के बीच चुनाव बंद कर दें। जब वह दो विकल्पों के बीच चुनाव बंद कर दें। क्यों? क्योंकि मैं आपसे कहूं, जहां दो विकल्प है। इसे थोड़ा सूक्ष्मता से समझेंगे, जहां दो विकल्प है। वहां एक तीसरा मैं भी हूं, जो उनको चुनता हूं। गृहस्थी है और संन्यास है, सुख है और दुख है, राग है और विराग है। भोग है और त्याग है, यह दो-दो विकल्प है यह द्वंद है। इन दोनों के जोड़ें हैं लेकिन चुनाव करने वाला, मैं तीसरा अलग हूं। न भोग को चुनता हूं, या त्याग को चुनता हूं। त्याग और भोग दो विकल्प हुए और मैं चुनने वाला तीसरा हुआ, जब तक मैं किसी भी विकल्प में से कुछ भी चुनूंगा तब तक मैं अशांत रहूंगा। लेकिन अगर मैं उसको चुन लूं। जो कि चुनाव करता है, तो जीवन में शांति का प्रारंभ हो जाएगा। जब तक मैं द्वंद में से किसी को चुनूंगा, राग को या विराग को तब तक अशांति का अंत नहीं है। लेकिन अगर मैं उसको चुन लूं। जो कि चुनाव करने वाला है न तो राग को चुनूं, न विराग को। बल्कि उसमें प्रतिष्ठित हो जाऊं। जो कि राग को चुनता है या विराग को चुनता है। जो गृहस्थ होता है, या संन्यासी होता है, वह जो चैतन्य है। अगर मैं उस तीसरे बिंदु को वह जो थर्ड पॉइंट है। अगर उस पर खड़ा हो जाऊं, तो जीवन में शांति संभव है। द्वंद के बाहर हो जाना शांति है और द्वंद में चुनाव करना अशांति है। इसलिए सुख, शांति नहीं है। न दुख शांति है। यह दोनों द्वंद है। दोनों उत्तेजनाएं हैं। शांति इन दोनों के बाहर है।

इन दोनों से ऊपर उठ जाने में हैं। बहुत कम लोग है संसार में, जो इन दोनों के ऊपर उठते हो। बहुत लोग है जो भोग में रहते हैं कुछ थोड़े से लोग है जो त्याग में होते हैं। लेकिन त्याग और भोग कुएं और खाई की तरह है। इधर गिरें तो कुंआ है उधर गिरे तो खाई है। रास्ता बीच में है। रास्ता हमेशा बीच में है। हमेशा द्वंद के द्वैलिटी के बीच में कोई मध्य थोड़ी सी पतली लकीर है और इसलिए जो जानते हैं उन्होंने कहा कि रास्ता तलवार की धार की तरह पतला है। इधर गिरे तो कुंआ होगा, उधर गिरे तो खाई होगी।

कनफयूसियस चीन का एक विचारक था। एक गांव में गया। छोटा सा गांव था, लेकिन उस गांव में लीपते हैं नाम का बहुत बड़ा विचारक रहता था। गांव में जाते ही लोगों ने कनफयूसियस से कहा कि हमारे गांव में एक अदभुत विचारक है। बहुत बड़ा विचारक है। कनफयूसियस ने पूछा उसके बड़े विचार का क्या लक्षण है। क्या कारण है कि तुम उसे बड़ा विचारक कहते हो। तो लोगों ने कहा कि वह बड़ा विचारक है इतना बड़ा विचारक है कि किसी काम को करने के पहले तीन बार विचार करता है। कि करना है कि नहीं करना। तो कनफयूसियस हंसने लगा, और उसने कहा, तीन बार विचार करना थोड़ा ज्यादा हो गया है। एक बार विचार करना थोड़ा कम होता है। दो बार विचार करना पर्याप्त है। दो बीच का बिंदु है, एक बार विचार करने वाला कम विचार कर रहा है। तीन बार विचार करने वाला ज्यादा विचार करने लगा। एक बिंदु है बीच में, दो का कनफयूसियस ने कहा—वहां जो ठहर जाता है। वह जानता है, यह तो एक छोटी सी घटना है। लेकिन सच है यही बात जिंदगी में तीन हमेशा मौजूद है, जिंदगी तीन हिस्सों में बंटी है। पूरी जिंदगी, पूरे मनुष्य के जिंदगी तीन टुकड़ों में बंटी है हमेशा। और जो एक को चुनता है, या तीन को चुनता है, वह भूल में पड़ जाता है। और जो दो पर खड़ा हो जाता है वह जीवन को जान लेता है, उसके अर्थ को उसके रस को।

कशता दुख और शांति

दो पर खड़े हो जाना धर्म है, एक पर खड़ा होना राज है। तीन पर चले जाना वैराग्य है। दो पर खड़े हो जाना वीतरागता है, यह दो पर हम कैसे खड़े हो सकते हैं। मध्य में, वह जो बिलकुल मध्य में है। दोनों के बाहर हो जाता है। जो बिलकुल मध्य होता है, दो अतियों के, दो एक्सट्रीम के, वह दोनों एक्सट्रीम के बाहर हो जाता है। अतियों के ऊपर हो जाता है। द्वंदातीत होना, धर्म में प्रतिष्ठित होना है। और द्वंद के अतीत हमारा स्वरूप है। लेकिन हम चुनते हैं।

एक व्यक्ति था, एक अंधेरी रात में एक पहाड़ी के किनारे एक साधु ने उसे पकड़ा। वह आत्महत्या करने जा रहा था। अंधेरी रात थी, बरसा के दिन थे, एक पहाड़ी के किनारे से नीचे के खड्डु में गिरकर वह आत्मघात करने को था। बीच-बीच में बिजली चमकती थी, साधु का झोपड़ा था वह वहां गया। उसने उस आदमी के कंधे पर हाथ रखा। उस आदमी ने पूछा आप कौन है जो मुझे रोक रहे हैं। उस साधु ने कहा—मुझे रोकने से क्या प्रयोजन है। एक छोटी सी बात कहने का मन हुआ, वह कहने चला आया। पूछा उस आदमी ने कौन सी बात कहने का मन है। उस साधु ने कहा—कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है। कि आप जीवन से निराश हो गए हैं और अपने को समाप्त करना चाहते हैं। अन्यथा इस रात इस अंधेरे में इस पहाड़ी पर कोई नहीं आता। फिर दो-तीन बार बिजली चमकी, और मैंने देखा कि आप किनारे पर खड़े हैं। जरूर मन में कोई बड़ी चिंता और बेचैनी चल रही है। उस व्यक्ति ने कहा—कि निश्चित ही मैं बहुत दुखी हूं। और दुख में जीना ठीक नहीं है। मैं अपने को समाप्त करना चाहता हूं। साधुओं ने कहा कि आप समाप्त करना चाहें, तो जरूर करें। लेकिन एक दो-तीन बात मैं आपसे पूछ लूं। क्या कभी आप सुखी भी थे।

उस व्यक्ति ने कहा—निश्चित ही, दिन थे मेरे और मैं बहुत सुखी था, बहुत संपत्ति थी, बहुत यश था, वैभव था, फिर सब विनष्ट हो गया है। अब मेरा सब नष्ट हो गया है। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं बहुत दुख में हूं। उस साधु जोर से हंसने लगा और उसने कहा कि मैं जाता हूं। तुम्हारे मन में जो आए करो। एक ही बात मुझे कहनी है। कभी तुम सुख में थे, अब तुम दुख में हो। निश्चित ही तुम सुख और दुख दोनों से अलग होओगे। नहीं तो सुख और दुख दोनों में यात्रा कैसे कर सकते थे। मैं अभी गांव में था। अब गांव के बाहर आ गया। अभी आपके गांव में हूं, थोड़ी देर बाद दूसरे गांव में चला जाऊंगा। तो मैं गांव से अलग हो जाना चाहिए तभी तो मैं एक गांव से दूसरे गांव में यात्रा कर सकता हूं। मैं सुख में होता हूं, सुख से दुख में चला जाता है। दुख से सुख में आ जाता हूं तो निश्चित ही मैं जो हूं वह सुख और दुख से अलग होना चाहिए। तभी तो मैं यात्रा कर सकता हूं। नहीं तो यात्रा कैसे होगी। अगर मैं आपका गांव ही हो जाऊं, तो फिर दूसरे गांव में कैसे जाऊंगा। अगर इस भवन में आऊं, और भवन ही हो जाऊं। तो फिर भवन के बाहर कैसे जाऊंगा।

जो आदमी भवन के भीतर आ सका है, वह भवन से अलग है, भवन के बाहर जाएगा। भवन से अलग है, हम सुख में जाते हैं, दुख में जाते हैं, राग में जाते हैं, विराग में जाते हैं, भोग में जाते हैं, त्याग में जाते हैं। दोनों ही स्थितियां इस बात की सूचना करती है। कि हम अलग है, हम पृथक है, हमारा भेद है। हम जिन स्थितियों से गुजरते हैं, उनसे हमारा पृथकता है, जीवन में अनुभव का और कोई अर्थ नहीं होता। अनुभव का एक ही अर्थ होता है, कि अनुभवों के भीतर हम उसको पहचान लें। जो अनुभवों से भिन्न और पृथक है। जो आदमी उसे पहचान लें, वह प्रौढ़ हो जाता है। जो उसे न पहचान पाए वह अप्रौढ़ होता है। और बचपन में ही मर जाता है। बहुत कम लोग है, जो ठीक से वृद्ध होकर मरते हो, अधिक लोग बच्चे ही मर जाते है। क्योंकि अनुभव का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु उनसे अपरिचित रह जाता है। वह द्वंद के बीच हमेशा चुनाव करते रहते हैं। इसे चुनते हैं, उसे छोड़ते हैं, उसे छोड़ते हैं, इसे चुनते हैं। लेकिन कभी उसे नहीं देख पाते जो कि चुनाव के पीछे खड़ा है। और अलग है, द्वंद के बीच उसका बोध जो कि द्वंद से पृथक है। एक आदमी दूकान पर बैठा रहता है, अभी सुबह में किसी मित्र को बात कर रहा था। दूकान से ऊब जाता है तो मंदिर चला जाता है। दूकान से घबड़ा जाता है तो मंदिर में बैठ जाता है जाकर। सोचता है कि मंदिर में थोड़ा शांति मिलती है। वह शांति मंदिर की नहीं है। क्योंकि मंदिर का जो पुजारी है, वहां प्रार्थना करके चौबीस घंटे मंदिर में रह रहा है, वह ऊब जाता है। तो जाकर शराबखाने में शराब पी आता है, या होटल में चाय पीता है बैठकर।

वह मंदिर से ऊब जाता है तो दूकानों पर बैठकर गपशप लगाने जाता है। जो दूकान से ऊब गया है, वह मंदिर में जाता है। जो यहां संसार से ऊब गए है, हिमालय पर जाते हैं जो हिमालय से ऊब गए हैं, वे नीचे उतर रहे हैं। शहरों में आ

रहे हैं, लेकिन जो आदमी दूकान से घबड़ा कर मंदिर जाता है। मंदिर से घबड़ाया हुआ आदमी दूकान पर आता है। यह कभी इस विचार को उपलब्ध नहीं होते। कि वह जो हमारे भीतर है, वह न तो दूकान में है और न मंदिर में है। दूकान को मंदिर से बदलेंगे लेकिन भीतर का आदमी तो वही का वही रहा है। वह जो भीतर हमारा स्वरूप है, जो भीतर हमारा साक्षी है, वह जो भीतर हमारा चैतन्य है। उस चैतन्य में प्रतिष्ठित होना है। और उसकी प्रतिष्ठा में शांति उपलब्ध होगी। लेकिन जब तक हम विकल्प को चुनेंगे, आल्टरनेटिवस को चुनेंगे। तब तक कोई शांति नहीं हो सकती। तो न तो भौतिकवाद और न अभौतिकवाद, न तो संसार और न मोक्ष, इन विरोधी विकल्पों में जब तक हमारा चित्त चुनाव करता रहेगा। जब तक हमारी कोई चॉयस होती रहेगी। तब तक स्वाभाविक है कि हमारे जीवन में कोई शांति न हो। शांति का संबंध है, चॉयसलेस हो जाने से, शांति का संबंध है, चुनाव से मुक्त हो जाने से। आप कहेंगे यह कैसे हो, यह कैसे होगा कि हम चुनाव से मुक्त हो जाए। हम चुनाव न करें, यह कैसे हो? यह निश्चित हो सकता है, अगर हम उस तीसरे बिंदु के प्रति थोड़ा जागरण लाए। और उस तीसरे को थोड़ा अनुभव करना शुरू करें जैसे जीवन भर रोज तो घटनाएं घट रही है। आप दुख में होते होंगे, कभी बीमार पड़ते होंगे। अभी एक मित्र को देखने गया वे बहुत बीमार थे। उनके सिर में बहुत दर्द था, तो मैंने उनसे कहा—यह तो अच्छा मौका है। इस वक्त एक प्रयोग करें, अपने भीतर यह देखने की कोशिश करें कि जो दर्द हो रहा है वह और जिसको दर्द अनुभव हो रहा है वह दो अलग है या एक है।

जिसे दर्द की प्रतीति हो रही है, अनुभूति हो रही है वह अलग है। या कि दर्द के साथ एक है, उन्होंने आंख बंद की। पांच मिनट बाद मुझसे कहा—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। मैं जानने वाला तो अलग मालूम होता हूं। असल में उस चीज को आप जान ही नहीं सकते। जिसके साथ आप एक हो, केवल उसी को जान सकते हैं, जिससे आप अलग हों। मैं आपको देख रहा हूं यह इस बात का प्रमाण है। कि मैं आपसे अलग हूं, आप अपने को नहीं देख सकते या कि देख सकते हैं।

आप अपने को नहीं देख सकते हैं, आप जो भी देख सकते हैं, वह अन्य होगा। आप जिसका भी अनुभव कर सकते हैं वह अलग होगा। वह आपसे पृथक होगा, आप अपने को न देख सकते हैं कोई रास्ता नहीं है, तो जिन-जिन चीजों को आप अनुभव कर सकते हैं। अनुभव करने के कारण ही वे आपसे पृथक है। आपसे अन्य है, अलग है। अगर पैर में आपके दर्द है तो थोड़ा अनुभव करें और देखें तो आपको ज्ञात होगा। कि आप देखने वाले अलग है। और पैर का दर्द अलग है। और जैसे-जैसे इसका अभ्यास गहरा होगा, आप पाएंगे कि दर्द शरीर पर हो रहा है। और आप बिलकुल दूर खड़े हुए है। शरीर से क्रमशः पृथकता बढ़ती जाएगी। अगर आप स्पष्ट रूप से भीतर हमेशा जब भी कोई ज्ञान हो, जब भी कोई अनुभव हो, तो एक पृथकता का अनुभव करें। आप रास्ते पर चल रहे हैं, तो जरा भीतर अपने देखें। कि आपके भीतर जो चेतना है, वह चल रही है, या चलने को जान रही है। तो आप बहुत हैरान होकर पाएंगे कि आपके भीतर जो चैतन्य है वह चल नहीं रहा है। केवल चलने को जान रहा है।

शरीर चल रहा है और चेतना जान रही है। आप खाना खा रहे हैं तो खाते वक्त अनुभव करें, और स्मरण करें—कि आपकी चेतना खाना खा रही है क्या? तो आपको स्पष्ट ज्ञात होगा कि खाना शरीर में जा रहा है, और चेतना उसको अनुभव भर कर रही है। देख रही है, जान रही है, चेतना का, चेतना का केवल लक्षण जानना है। जानने के अतिरिक्त उसने कभी कुछ भी नहीं किया। लेकिन जानने के साथ अगर बोध न हो, तो जो हम जानते हैं उसी के साथ आइडेंटिटी हो जाती है तादात में हो जाता है।

एक फिल्म को देखने आप जाते है या एक नाटक को देखने जाते हैं। फिल्म पर या पर्दे पर कोई कहानी चलती है, कोई कथा चलती है। कथा अगर दुखद हो तो, आप रोने लगते हैं, आप वहां भी भूल जाते हैं कि पर्दे पर कुछ भी नहीं है। एक आइडेंटिटी हो जाते हैं, एक तादात में हो जाता है। वहां जो अभिनय हो रहा है, केवल विद्युत का खेल है। लेकिन उस अभिनय में, उन चित्रों में भी आप खो सकते हैं। और तल्लीन हो सकते हैं, और भूल सकते हैं कि मैं केवल दर्शक हूं। अनुभव कर सकते हैं कि मैं भी भोक्ता हो गया। छोटे लोग नहीं, बड़े-बड़े लोग विद्यासागर के बाद, विद्यासागर के बाबत एक घटना है।

कशता दुख और शांति

ईश्वरचंद्र विद्यासागर का नाम आपने सुना होगा। बड़े विचारशील व्यक्ति थे, बड़े पंडित थे। एक नाटक को देखने गए थे, और नाटक में एक व्यक्ति है खलनायक है। वह एक स्त्री के पीछे पड़ा है और उसे परेशान कर रहा है। हर तरह से परेशान कर रहा है। ईश्वरचंद्र बड़े सदविचारक थे, वे यह भूल ही गए कि नाटक देख रहे हैं। उन्हें इतना गुस्सा आया, उस आदमी पर कि यह स्त्री को परेशान कर रहा है। इतना अनैतिक काम कर रहा है। उठे जूता निकाला और फेंक कर मार दिया। जूता नाटक में, एक खलनायक को फेंक कर मार दिया। भूल गए यह कि मैं केवल देखने वाला हूं, और मात्र जो दिखाई पड़ रहा है। वह नाटक है, खलनायक उनसे कहीं ज्यादा समझदार सिद्ध हुआ। उसने जूते को सिर से लगाया। और उसने कहा कि इससे बड़ा पुरस्कार मुझे कभी नहीं मिला। क्योंकि मेरे अभिनय को इससे ज्यादा सच कभी नहीं माना गया। और इतने बड़े आदमी ने उसको सत्य मान लिया है। तो मेरे ऊपर तो धन्यकृपा हो गई। मुझे बहुत पुरस्कार मिलें है लेकिन इस जूते से बड़ा मेरा कोई पुरस्कार आज तक नहीं मिला।

विद्यासागर बहुत घबड़ा गए, पसीने-पसीने हो गए। क्षमा मांगने लगे, कि मैं भूल गया। बड़े से बड़ा आदमी नाटक में खो सकता है। हम भी खोते हैं वैसा ही चित्त पर भी अनुभवों का एक नाटक निरंतर चल रहा है। सुख आते हैं, दुख आते हैं। वर्षा आती है, गर्मी आती है, शीत आती है, परिवर्तन होते रहते हैं। छाया आती है, प्रकाश आता है, अंधेरा आता है। हमारे चित्त के पर्दे पर बहुत से परिवर्तन निरंतर हो रहे हैं। क्योंकि चित्त पूरे वक्त बाहर के जगत को प्रतिफलित करता है रिफलेक्ट करता है। चित्त तो एक बड़ा सजीव यंत्र है, बड़ा सचेतन, बहुत ही सैनसिटिव, बहुत संवेदनशील, जो भी बाहर घटता है वह उसे जल्दी से खबर दे देता है। पैर में दर्द होता है, चित्त खबर दे देता है, कि पैर में दर्द हो रहा है। सिर में तकलीफ होती है, चित्त खबर दे देता है, सिर में तकलीफ हो रही है। कोई गाली देता है, कोई प्रेम करता है, कोई अपमान करता है, कोई सम्मान करता है। चित्त खबर दे देता है, कि ऐसा-ऐसा हो रहा है। चित्त एक अत्यंत संवेदनशील यंत्र है, जो खबरें दे रहा है, पूरे वक्त। उन खबरों में हम जो भीतर जानने वाले हैं, प्रत्येक खबर से अलग और भिन्न है। लेकिन हम प्रत्येक खबर के साथ जुड़ जाते हैं। और अपने को एक समझ लेते हैं। अगर आप मेरा सम्मान करते हैं, तो मैं समझ लेता हूं कि मेरा सम्मान हुआ।

जब कि कुल बात इतनी है कि मेरे चित्त ने खबर दी। कि कुछ लोग सम्मान कर रहे हैं, और मैंने इसे पकड़ लिया। और समझा कि मेरा सम्मान हुआ, जबकि मैं केवल सम्मान करने वाले लोगों को और सम्मान को देखने वाला हूं। मैं केवल साक्षी हूं, अगर कोई अपमान कर रहा है। तो चित्त खबर देता है, कि अपमान किया जा रहा है। और मैं समझ लेता हूं, कि मेरा जबकि मैं केवल जानने वाला हूं। सम्मान आता है, अपमान आता है, सुख आते हैं, दुख आते हैं। मैं केवल जानने वाला हूं, मैं तीसरा बिंदु हूं जो केवल जान रहा है। अगर जीवन में सजगता से, सचेतता से, होश से अगर हम अपने अनुभव से गुजरे तो आप पाएंगे, आपका अनुभव ही, आपको अनुभव से मुक्त करने का मार्ग बन जाता है। सत्य को पाने के लिए स्वयं को पाने के लिए संसार से कहीं भागने की नहीं, बल्कि संसार के बीच जो अनुभव हो रहे हैं। उनके बीच जागने की जरूरत है, भागना नहीं, जागना, बिंदु है साधना का। भागने वाला, जाग नहीं सकता। क्योंकि वह तो अनुभवों के साथ अपने को एक मान लिया घबड़ा कर भाग रहा है।

कबीर का एक लड़का था, कमाल। कबीर बड़े त्यागी थे, बड़े विरागी थे, और कमाल कुछ अजीब का लड़का था। कबीर उससे बहुत परेशान थे। गुस्से में उन्होंने कमाल को बाहर निकाल दिया घर से, कबीर का कहना था कि अपरिग्रही हूं। मैं घर में कोई संपत्ति नहीं रखता, और कमाल कुछ अजीब था। गांव के लोग अगर उसे कुछ दे देते। तो वह लेकर घर आ जाता, जो लोग कबीर को भेंट करना चाहते। कबीर इंकार कर देते, बाहर कमाल बैठा रहता उसको दे जाते तो वह ले लेते। तो कबीर ने कहा—कि यह परिग्रही वृत्ति यहां नहीं चलेगी। तुम इस घर से अलग हो जाओ। इस झोपड़े को अपवित्र मत करो। यह संन्यासी का झोपड़ा है, तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी वृति से मेरा मेल नहीं। कबीर ने अलग कर दिया, तो कमाल थोड़े दूर जाकर एक झोपड़ा बनाकर रहने लगा।

काशी के नरेश कबीर के पास कभी-कभी आते थे। मिलने आए थे, तो उन्होंने कबीर को कहा, कि कमाल दिखाई नहीं पड़ता। कबीर ने कहा—उसका नाम न ले। उससे मेरा कुछ मेल नहीं बैठता। वह कुछ बड़ी लोभी प्रकृति का है जो भी

कोई कुछ दे देता है, तो ले आता है। तो नरेश उठकर वहां से निकले, तो कमाल से भी लौटते में मिलने गए। देखने के लिए कि कहां तक बात सच है। उन्होंने बहुत बहुमूल्य हीरा कमाल को भेंट किया। जाकर कमाल को नमस्कार किया! वह हीरा रखा, तो कमाल ने कहा लाए भी तो एक पत्थर लाए। कुछ और लाना था तो कुछ उपयोग का भी होता। नरेश ने सोचा—कि कबीर फिर कुछ झूठ कहते होंगे। क्योंकि यह आदमी तो कह रहा है, हीरे को पत्थर। तो नरेश उस हीरे को उठाकर वापस रखने लगे तो कमाल हंसा। और उसने कहा—फिर आप इसको पत्थर नहीं मानते। अभी इतनी दूर तक बोझ ढोया, तो अब वापस बोझ क्यों ले जाते है? छोड़िए भी! तो नरेश को बहुत चिंता हुई। मन में खयाल हुआ कि यह तो बेईमान मालूम होता।

यह तो कोई बड़ा होशियार कुछ बातचीत में बड़ी होशियारी मालूम होती है। पहले तो इसने कहा पत्थर बड़ा त्याग दिखलाया और अब यह कहता है कि पत्थर है तो छोड़ जाइए। नरेश ने पूछा—अच्छी बात है इसे कहां रख दूं। तो कमाल ने कहा फिर ले जाइए। क्योंकि जब आप पूछते हैं कहां रख दूं तो फिर आप इसको पत्थर नहीं मानते हैं। फिर आप इसको मानते हैं कि इसका कोई मूल्य है, कहां रख दूं? तो फिर आप ले जाइए। नरेश कुछ हैरान हुआ। इस बीच कुछ तय करना मुश्किल हो गया। कि इसकी वृत्ति क्या है।

फिर भी नरेश उसको उसके झोपड़े में खोस आया। सनौली का झोपड़ा था। उसके छप्पड़ में हीरे को रख दिया। चलते वक्त उससे कहा—कि यह मैं हीरा यहां रखा जाता हूं। कमाल ने कहा—तुम्हारी मर्जी है! लेकिन मैंने तो कहा कि हीरा है नहीं पत्थर है। और फिर भी तुम बार-बार मुझे जताते हो, तुम भाई उसे ले जाओ। पत्थर समझते हो तो छोड़ जाओ, हीरा समझते हो तो ले जाओ। नरेश उसे खैर उस झोपड़े में खोस गया और चला गया। आगे जाते ही उसके वजीर ने कहा—कि आप इधर पीठ फेरी वहां हीरा निकाल लिया गया होगा। क्योंकि वह आदमी तो बहुत होशियार मालूम पड़ता है बातचीत में। और कोई खास बात नहीं मालूम होती।

नरेश ने कहा—दो चार आठ दिन में चलेंगे। कुछ काम में उलझा रहा और छः महीने बाद गया। जाकर उसने कमाल से पूछा कि मैं एक हीरा यहां भेंट कर गया था वह कहां है। कमाल ने कहा—मैंने आज तक किसी की भेंट न ली, और न किसी की भेंट इंकार की। कमाल ने कहा—न मैंने कभी किसी की भेंट ली और न किसी की भेंट इंकार की। भेंट लेने वाले लोग भी है, भेंट को इंकार करने वाले लोग भी है। मैं उन दोनों के बाहर हूं। क्षमा करें! मुझे न आप कभी कुछ दे गए, न मैंने कभी किसी से कुछ लिया। उसने कहा—आप कैसी बात करते हैं। मैं एक हीरा यहां रख गया था, इस झोपड़े के छप्पर में। तो कमाल ने कहा—अगर कोई न ले गया हो, तो छप्पड़ में होगा, और कोई ले गया हो तो मेरा कोई जुम्मा नहीं। नरेश ने सोचा कि इसने निकाल लिया है अब यह तरकीबें है। वह जाते वक्त उसने झोपड़े को देखा, वह हैरान हुआ हीरा वहां मौजूद था। वह हीरा वहीं की वहीं रखा हुआ था। इस वृत्ति को मैं वीतरागता कहता हूं। यह गृहस्थ और संन्यास दोनों से भिन्न है। यह अचुनाव की स्थिति है। ऐसा चित्त यह जानता है कि जो भी मैं चुन रहा हूं। सब चुनाव तादात में है। सब चुनाव आसक्तियां है, चाहे आसक्ति भोग की हो, चाहे त्याग की हो। चाहे आसक्ति सुख की हो, चाहे दुख की हो। चाहे कपड़ों की हो, चाहे नग्नता की हो। चाहे घर की हो, चाहे बेघर होने की हो। दोनों स्थितियों में मैं चुनाव कर रहा हूं। सवाल उसको देखने और जानने का है जो चुनाव करता है। उस चैतन्य को, उस चेतना को, उस होश को, उस अवेयरनेस को जो हमारे भीतर है। जो विकल्प चुनती है।

अगर हम जीवन के सारे छोटे-छोटे अनुभवों में सुबह उठने से लेकर रात सोने तक इस बोध की चिंगारी को थोड़ा जगा सके और यह कठिन नहीं है। क्योंकि कोई हिमालय पर जाने की, किसी मंदिर में या किसी मस्जिद में जाने का सवाल नहीं है। कोई रोटी छोड़ने की कपड़ा छोड़ने का कोई सवाल नहीं है। सवाल बड़ा है उस चिंगारी को भीतर जगाए रखने का, वह करीब-करीब सोई-सोई हो गई। उस पर राख ही राख जम गई है। हमें पता ही नहीं है, हम विकल्पों में ही जीते हैं और उसको अनुभव नहीं कर पाते। जो विकल्पों को चुनता है, वह जो वास्तविक है तीसरा। उसे हम कभी खयाल नहीं कर पाते और दो जो अतियां है। उनके बीच डोलते रहते हैं। घड़ी का पैंडुलम जैसे एक कोने से दूसरे कोने पर चला जाता है। दूसरे

कोने से फिर दूसरे कोने पर चला जाता है। वैसा हमारा चित्त डोलता रहता है। और घड़ी के पैंडुलम को यह पता ही नहीं चल पाता कि डोलना उसका स्वरूप नहीं है। पैंडुलम अपने भीतर बिलकुल अनडोला है।

वह पैंडुलम जो डोल रहा है, अपने भीतर बिलकुल थिर है। सारा कंपन दो अतियों के बीच है भीतर निष्कंप है। भीतर हम भी निष्कंप है, भीतर कोई कंपन न कभी हुआ है न हो सकता है। लेकिन सारा कंपन दो अतियों के बीच चुनाव करने में हैं। चुनाव को छोड़े और उसके प्रति जागें, जो कि चुनाव करता है और चुनाव के बीच में है। इसलिए जीवन पूरा का पूरा अखंड साधना है, कोई खंडित साधना नहीं है, कि तेईस घंटे कुछ किया। और घंटे भर मंदिर में बैठकर जाप फेरी या माला जपी या कुछ और किया।

उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा तो झूठी बात होगी। जीवन तो पूरा को पूरा अखंड है, उसमें घंटा भर धार्मिक और तेईस घंटे अधार्मिक नहीं हुआ जा सकता। चौबीस घंटे अगर होशपूर्वक जीवन की सामान्य से सामान्य क्रिया में जब रात्रि को आप बिस्तर पर सोने गए हैं। तो आप जरा जागकर देखें, कि आप देख रहे हैं, अपने को बिस्तर पर सोते हुए जाते या कि आप सोने जा रहे हैं। तो आपको तत्काल स्पष्ट बोध होगा कि आप देख रहे हैं कि आप बिस्तर पर सोने जा रहे हैं। धीरे-धीरे अगर आपका नाम राम है, तो आप लगेगा राम बिस्तर पर सोने जा रहा है। अगर कोई आदमी गाली देगा तो आपको लगेगा राम को गाली दी जा रही है। अगर आपका कोई सम्मान करेगा तो आपको लगेगा राम का सम्मान किया जा रहा है। और आप हमेशा एक देखने वाले साक्षी की तरह स्थापित हो जाएंगे। जिस मात्रा में साक्षी की स्थापना होती है, उसी मात्रा में व्यक्ति शांत होने लगता है। सुख और दुख के बाहर होने लगता है।

जिस-जिस मात्रा में साक्षी की स्थापना होती है। उसी मात्रा में व्यक्ति शरीर से मुक्त होने लगता है। और आत्मा में प्रतिष्ठित होने लगता है। जिस-जिस मात्रा में साक्षी की स्थापना होती है। उसी-उसी मात्रा में व्यक्ति मृत्यु के बाहर होने लगता है। और जीवन में प्रवेश करने लगता है। साक्षी में खड़े हो जाना स्वरूप में खड़े हो जाना है। स्वरूप में खड़े हो जाना सब कुछ पा लेना है जो पा लेने जैसा है। और मामला कुछ ऐसा अदभुत है—कि जिसे हमने कभी भी नहीं खोया है। वही साक्षी होकर वापिस मिल जाता है।

जिसे हमने कभी भी नहीं खोया है, उसे हम खो नहीं सकते। वह हमें वापिस मिल जाता है। और यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, यह कोई अंधविश्वास नहीं है। इसके लिए जरूरत नहीं है कि आप मानें, कि महावीर तीथ□कर थे, और भगवान थे। इसके लिए जरूरत नहीं है कि आप मानें कि राम और कृष्ण अवतार थे। इसके लिए जरूरत नहीं है कि आप मानें कि क्राइस्ट परमात्मा के पुत्र थे। इसके लिए जरूरत नहीं है कि मोहम्मद जब स्वर्ग गए तो सात घोड़ों पर सवार होकर गए। और सशरीर चले गए। इसके लिए जरूरत नहीं है कि आप मानें कि आपके भीतर आत्मा है। इसके लिए जरूरत नहीं है, कि आप मानें कि परमात्मा है। उसने सृष्टि को बनाया, इसके लिए किसी तरह के अंधविश्वास की कोई जरूरत नहीं है। जरूरत है कुछ गहरे प्रयोगों की, चेतना आपको अनुभव हो रही है। आपको अनुभव हो रहा है, कि आप विचार करते हैं। विवेक करते हैं, चुनाव करते हैं। तो इस चेतना पर थोड़े गहरे प्रयोग करने की जरूरत है, धर्म अंधविश्वास नहीं है प्रयोग है और धर्म मानना नहीं है बल्कि जानना है। और जिन लोगों ने धर्म को अंधश्रद्धा और विश्वास बना दिया। उनसे बड़े दुश्मन धर्म के दूसरे नहीं है।

उन्होंने धर्म का नष्ट कर दिया है। उनके कारण धर्म का विरोध पैदा हुआ, उनके कारण धर्म के प्रति प्रतिशोध पैदा हुआ। प्रतिक्रिया पैदा हुई, उनके कारण सारी दुनिया में नास्तिकता पैदा हुई। जिन लोगों ने धर्म को अंधविश्वास बनाया है, बिलीफ बनाया है, उन लोगों ने सारी दुनिया में नास्तिकता पैदा की। उनका विरोध है वह, वह नास्तिकता उनका फल है। धर्म तो एक विज्ञान है, एक साइंस है, और धर्म का कोई संबंध किसी तरह के विश्वास और मान्यता से नहीं है। बल्कि जीवन में प्रयोग करने से हैं। और उस आदमी को हम अंधा कहेंगे, जो कि अपनी चेतना पर प्रयोग न करता हो।

चैतन्य है, इसे दुनिया का कोई नास्तिक भी मानता है। कि हमारे भीतर चैतन्य है, भला वह कहता हो कि वह चेतना जो है पदार्थ से पैदा हुई। कोई फिक्र की बात नहीं है, यही कहो लेकिन उस चेतना पर प्रयोग करो, प्रयोग करने से ज्ञात होगा कि चेतना पदार्थ से बिलकुल मुक्त और अलग है। प्रयोग करने से ज्ञात होगा, कि चेतना मात्र चेतना नहीं है। बहुत गहरे में

आत्मतत्व है, प्रयोग करने से ज्ञात होगा आत्मतत्व मात्र आत्मतत्व नहीं है बल्कि समस्त जगत परमात्मा से व्याप्त है। यह तो जितने गहरे हम तल पर प्रयोग करेंगे। लेकिन हममें से बहुत लोग नदी के ऊपर की लहरों को देखकर ही जीवन को समाप्त कर देते है। और उस गहराई को जानने से वंचित रह जाते हैं। जहां कि नदी के असली प्राण है।

और उस गहराई में उतरने से वंचित रह जाते हैं, जहां के हीरे और जवाहरात है। हमारे भीतर बहुत है सब है जो हो सकता है। केंद्र पर हमारे वह सारी संपदा है जिसे पा लेने से शांति मिलेगी। जिसे पा लेने से जीवन का आनंद मिलेगा। जिसे पाने से जीवन की मुक्ति मिलेगी, जिसे पा लेने से अर्थ और अभिप्राय मिलेगा। लेकिन उस पर प्रयोग करने होंगे, विश्वास नहीं। तो मैंने जो बातें कहीं वह भी विश्वास करने की नहीं है। अगर विश्वास करने की हो तो संप्रदाय बनता है, अगर विश्वास करने के लिए कहा जाए तो संप्रदाय खड़े होते हैं। पंथ खड़े होते हैं, दुनिया में विश्वास के कारण सारे संप्रदाय और पंथ खड़े हुए। धर्म नष्ट हुआ तो मैं विश्वास के विरोध में हूं। क्योंकि मैं किसी भी तरह के संप्रदाय और पंथ के विरोध में हूं। मेरी मान्यता है कि धर्म निजी प्रयोग और अनुभव की बात है। कोई संघटन और समूह की बात नहीं है। और न किसी आप्त वचन में, न किसी आगम्य, न किसी शास्त्र में, अंधी श्रद्धा की जरूरत है।

अपने में प्रयोग करें, सब आगम सत्य हो जाएंगे। और आगम पर विश्वास कर लें, तो आप खुद ही असत्य हो जाएंगे। अपने में प्रयोग करें, तो सब शास्त्र सत्य हो जाएंगे। क्योंकि जो आप अपने भीतर जानेंगे वह उन शास्त्रों में पाएंगे कि है, और शास्त्रों पर विश्वास करें तो आप खुद ही असत्य रह जाएंगे। शास्त्र तो असत्य रहेंगे ही, स्वयं पर प्रयोग और अनुभव और स्वयं की चेतना में प्रवेश, जरूर श्रम मांगता है। साहस मांगता है, अकेली श्रद्धा नहीं, साहस और श्रम, चेष्टा और पुरुषार्थ मांगता है। लेकिन जो भी थोड़े प्रयोग करता है। वह बहुत उपलब्ध करता है।

और जब उपलब्धि होती है, तो प्रयोग के मुकाबले में ज्ञात होता है। हमने कुछ भी नहीं किया और मुफ्त में पा लिया। जो हम करते हैं, वह नाकुछ है, जो मिलता है वह बहुत कुछ है। न कुछ के मूल्य पर, बहुत कुछ पाया जा सकता है। अभागे होंगे वे लोग जो कि उसे पाने से, अपने हाथ से वंचित रह जाए। अगर हम वंचित रह जाएंगे तो हमारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है। यह थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। दो-तीन सूत्र मैं दोहरा दूं कि मैंने आपसे क्या कहा। मैंने आपसे कहा—कि द्वंद में स्वरूप नहीं है। जहां भी द्वंद है, और दो की अतियां है। वहां आप नहीं है, वहां आपकी आत्मा नहीं है।

इसलिए द्वंद में आप चुनेंगे कभी स्वयं को नहीं पा सकेंगे। अद्वंद में द्वंदातीत होने में द्वंद के बाहर होने में, अति के बाहर होने में। उस तीसरे को चुनने में जो हमेशा दो के पीछे खड़ा है, वहां स्वरूप है। उसे चुनने के लिए किसी श्रद्धा की, किसी विश्वास की जरूरत नहीं। प्रयोग की जरूरत है, और प्रयोग के लिए हिमालय पर, पहाड़ पर जाने की जरूरत नहीं। जीवन में चौबीस घंटे जो अनुभव हो रहे हैं। वही सजग होने की आवश्यकता है। अगर आप सजग होकर अपने अनुभव से गुजर जाए। तो संसार ही मोक्ष का द्वार बन जाता है। अगर आप सजग होकर जीवन से गुजर जाए तो जीवन का प्रत्येक अनुभव, जीवन से मुक्त करने का मार्ग बन जाता है। जीवन है कि जीवन से मुक्त आप हो सकें। इस चारों तरफ जो विस्तार है, जीवन के अनुभव का, संवेदनाओं का। वह सब आपको मुक्त करने में समर्थ है। अगर आप होशपूर्वक अपने अनुभव के प्रति जागें। जागते ही आपको दिखाई पड़ेगा, जो भी अनुभव होता है वह आपसे पृथक है। और आप भिन्न है।

जिस दिन यह भिन्नता गहरी हो जाएगी। जित मात्रा में गहरी हो जाएगी, जिस अनुपात में गहरी हो जाएगी। उसी अनुपात में आपके जीवन में आनंद का स्त्रोत और जीवन का स्त्रोत खुल जाएगा। उस स्त्रोत को उपलब्ध कर लेना धर्म है क्योंकि धर्म का अर्थ हैः स्वरूप, धर्म का अर्थ है स्वयं को पा लेना। जो स्वयं को पा लेता है, वह सत्य को पा लेता है। क्योंकि स्वयं के अतिरिक्त और कुछ भी आपके लिए सत्य नहीं हो सकता है। स्वयं ही बहुत प्रज्ञाढ़ता में सत्य है। और स्वयं ही बहुत प्रज्ञाढ़ता में परमात्मा है।

तत्व की खोज, तत्व का विचार नहीं। शास्त्र का अध्ययन नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर प्रवेश किसी पर श्रद्धा नहीं। किसी पर विश्वास नहीं, बल्कि अपनी आत्मचेतना पर प्रयोग। यह मैं आधार मानता हूं, जीवन सत्य की खोज के। इन आधारों से अगर हम वंचित है, तो हम कितने ही मंदिर जाए। और कितने ही प्रार्थनाएं करें और कितना ही परमात्मा के पैरों

में सिर झुकाएं। यह सब बच्चों जैसे काम है। इनसे कुछ होने वाला नहीं है। होगा! प्रयोग से। होगा! आत्मचेतना की साधना से। और प्रत्येक के जीवन में संभव हो सकता है।

अगर एक मनुष्य के जीवन में भी कभी यह संभव हुआ है। महावीर या बुद्ध के, कृष्ण या क्राइस्ट के, तो कोई वजह नहीं है हम भी हकदार है। हम भी उतना ही सब कुछ लेकर पैदा हुए है। वे ही हड्डियां है, वही शरीर है, वही चित्त है, वही भीतर चेतना है। लेकिन कुछ है जो कि नदी में गहरे बैठ जाते हैं। और कुछ है जो नदी के किनारे बैठे रह जाते हैं। कबीर ने कहा—मैं बोरी खोजन गई, रही किनारे पैठ। हम अधिक ऐसे ही पागल है, जो किनारे पर बैठे रह जाते हैं। और तब आखिर में हमें पता चलेगा, कि हम पागल थे जो किनारे पर बैठे रहे। हीरे और मोती, तो वहां गहरे में थे। और उस गहरे में कूदे बिना कोई उपाय नहीं। कोई दूसरा नहीं दे सकेगा, कोई आपके लिए नहीं कूद सकता। कोई आपके लिए आंख नहीं दे सकता अपनी। कोई अपना ज्ञान भी नहीं दे सकता है। खुद पाना होता है। और यह हमारा सौभाग्य है, कि खुद पाना होता है। अगर सत्य उधार मिल जाए खरीदे से मिल जाए, पैसा देने से मिल जाए। तो सत्य का मूल्य ही गिर जाएगा। वह पाने योग्य नहीं रह जाएगा।

मनुष्य की गरिमा है, कि जो भी पाने योग्य है। वह उसे खुद पाना होता है, किसी और के पैरों पर, और किसी की आंखों पर, किसी के हाथों का सहारा नहीं लेना होता है। न लेने कि जरूरत है, न लेने का अपमान, न लेने जैसी अपने साथ आत्मघातकता करने की कोई जरूरत है। आत्मश्रद्धा होनी चाहिए, परश्रद्धा नहीं। स्वयं में खोज होनी चाहिए, पर की शरण जाने की आवश्यकता नहीं है। किसी दूसरे के पैर पकड़ने की, किसी दूसरे के अनुयायी बनने की, किसी दूसरे की नकल करने की जरूरत नहीं है। अपनी चेतना में प्रवेश करने की जरूरत है। और जो प्रवेश करता है, वह धन्यभाग। वह महाभाग, वह बहुत कृतार्थता को उपलब्ध होता है। परमात्मा करे, वैसी कृतार्थता की तरफ इच्छा पैदा हो। संकल्प पैदा हो, खोज पैदा हो, यात्रा शुरू हो, उसकी मैं कामना करता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है। उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं।